

ॐ

नमः सिद्धेभ्य

दंशणामूलो धम्मो

संपादक

चिरंजीलाल पाटनी,

भावनगर

प्रकाशक

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान
 वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
 ५८०, जूनी माणेकवाडी,
 भावनगर-३६४००१
 फोन : (०२७८) २५१५००५ / २४२३२०७

श्री खीमजीभाई गंगर (विलेपार्ला, मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१
 श्री डोलरभाई हेमाणी, (कोलकाता) : (०३३) २४७५२६९७
 श्रीमती अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (R) (०७९) २५४५०४९२
 M. ३९७७१४८९६३

प्रथमावृत्ति : प्रत : १०००
 द्वितीयावृत्ति : प्रत : १०००
 तृतीयावृत्ति : प्रत : १०००

पृष्ठ संख्या : ८ + ६४ = ७२

लागत मूल्य : १४/-
 विक्री मूल्य : १०/-

टाईप सेटिंग :
 पूजा इम्प्रेसन्स
 प्लोट नं. १९२४-बी,
 ६, शांतिनाथ बंगलोझ,
 शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी सर्कल,
 भावनगर-३६४००१
 फोन : (०२७८) २२०३४७०

मुद्रक :
 आगवती ऑफसेट
 १५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
 बारडोलपूरा,
 अहमदाबाद
 फोन : ९८२५३२६२०२

प्रकाशकीय निवेदन (तृतीयावृत्ति)

‘दंसणमूलो धम्मो’ नामक यह लघुकाय ग्रंथ प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपने आध्यात्मिक प्रवचनोंमें सम्यग्दर्शनका सर्वोत्तम महिमा गायी है। धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन तीनोंलोकमें महिमावंत है। एक क्षणका सम्यग्दर्शन अनंत जन्म-मरणका नाश करता है ! ऐसा सम्यग्दर्शनका माहात्म्य ग्रंथ-ग्रंथोंमें आचार्य भगवंतों एवं ज्ञानीपुरुषोंने प्रकाशित किया है। जिसका संकलन इस पुस्तिकामें किया गया है।

अंततः इस लघुकाय ग्रंथका स्वाध्याय करके सर्व जीव ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनको प्राप्त हो, यही भावना।

भावनगर

ट्रस्टीगण

दि-२२-०७-२००५

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

(महावीर भगवान की

भावनगर

दिव्यध्वनि का पहला दिन)

‘दंसण मूलो धम्मो’ पुस्तक के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि

| | |
|--|--------|
| श्रीमती चंद्रिकाबहन शशीकांतभाई शेठ, भावनगर | २१००/- |
| श्रीमती विमलादेवी हिरालाल जैन, भावनगर | २१००/- |
| श्रीमती लक्ष्मीबहन खीमजीभाई गंगर, विलेपार्ले | १०००/- |

दो शब्द

प्रत्येक आत्मार्थीके लिए 'धर्मका मूल' सम्यग्दर्शनका स्वरूप सम्यग्दृष्टिकी गुण-आधारित लोकोत्तर महिमा व प्रत्यक्ष सत्पुरुष-योगका अनन्य साधनरूप महत्त्वको उनके यथार्थरूपमें समझनेकी अनिवार्यता भासित होना ही इस लघु कृतिका जन्म-कारण है।

समादरणीय भाईश्री शशीकांत म. शेट अपने नित्य प्रतिके प्रवचनोंमें अपनी समधुर व पांडित्य-कौशलसे अछूती शैलीमें उक्त विषयोंके अद्भुत गांभीर्य तथा लक्ष्य - प्राप्तिमें उनकी प्रबल सार्थकताका अपने संशोधक वृत्तिमय, सूक्ष्म, तल-स्पर्शी व मंथित भावाभिव्यक्ति द्वारा विश्लेषण व प्रतिपादन कर रहे हैं।

उनकी शैलीमें आगम-अध्यात्मका पारिस्परिक अविरोध, समन्वय व मर्यादाका सुस्पष्टीकरण सतत रहता है।

विषय-गहनताके स्पष्टीकरण हेतु वे अपने प्रवचनोंमें उपकारभूत शासन-शिरोमणि भगवत् 'कुंदकुंदादि' आचार्यों तथा आत्मज्ञ पूज्य 'गुरुदेवश्री कहानजी स्वामी', पूज्य 'बहिनश्री चंपाबहिन', पूज्य पंडितप्रवर श्री 'टोडरमलजी', पूज्य श्री 'दीपचंद्रजी कासलीवाल', पूज्य 'श्रीमद् राजचंद्रजी', पूज्य श्री 'निहालचंद्रजी सोगानी' आदि सत्पुरुषोंके ग्रंथों, उपदेशों, वचनामृतों, पत्रों व उद्गारोंका साभार बारंबार उद्धरण करते हुए उनके हार्द-प्रकाशन द्वारा उन सभीकी अनूठी आध्यात्मिक परिणतियोंका भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्यमें भाव-विभोर होकर रसमय चित्रांकन किया करते हैं; जिससे मेरे हृदयमें ज्ञानी-धर्मात्माओं व प्रत्यक्ष सत्-योगका अपूर्व मूल्यांकन तथा सत्-प्राप्तिकी भावना जगी है।

आपके हृदयमें रही देव-शास्त्र-गुरु व विद्यमान सत्पुरुष प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके प्रतिकी अनन्य भक्ति, समर्पणता तथा कर्तव्य

परायणता मेरे लिए तो एक प्रकाश-स्तंभ है।

मुझे सौभाग्यसे उनके प्रवचनों, समय-समय पर होती तत्त्वचर्चा व यथाप्राप्त निकट सान्निध्यका, पात्रता-विषयक गंभीरताके स्पष्टीकरणका, अनुपम लाभ मिलनेसे वे ही इस कृतिके प्रेरणा स्रोत रहे हैं, तदर्थ मैं उनका अंतःकरणसे अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

मैं अपनी अल्प बुद्धिसे उक्त विषयक जो कुछ भी आशय व मर्म ग्रहण कर पाया हूँ उसे सभीके लाभार्थ यथाशक्ति प्रस्तुत करनेका मेरा यह लघु प्रयास है।

आशा है, इस पुस्तिकामें सआधार दिए गए स्पष्टीकरण, समाजमें तत्त्वके अति महत्त्वपूर्ण विषयों संबंधी व्याप्त मिथ्या व निराधार धारणाओं और भ्रांतियोंके निर्मूलनार्थ, गुण-दोष व मुख्य-गौणकी समीचीन विचार-पद्धतिसे पुनर्विचार प्रेरित कराने में सहायक होंगे; ताकि अन्यथा पल्लवित होते विपर्यासके फलरूप अहितसे जीव बच सके।

अंतमें, सभी आचार्यों व ज्ञानियों, जिनके भाव व शब्दोंका आधार लिया गया है, का त्रियोग वंदनपूर्वक विनम्र कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

- संपादक

“सम्यग्दर्शन सब रत्नोंमें महारत्न है, सब योगोंमें
उत्तम योग है, सब ऋद्धियोंमें महाऋद्धि है।
अधिक क्या, सम्यक्त्व सब सिद्धियोंका करनेवाला
है।”

(का. अनुप्रेक्षा / मू. / ३२५)



“सम्यक्त्व सहित जीवकी जिन प्रवचनमें बड़ी
अधिकता है। जहाँ-तहाँ (सब जगह) शास्त्रोंमें
सम्यक्त्वकी ही प्रधानता कही है।”

(भावपाहुड / १४५)

“विनय है सो मोक्षका द्वार है।...”
 “जाके गुणांमें प्रीति आनंद होयगा सो ही
 गुणवंतनिमें विनय करेगा।”

(भगवती आराधना)



“सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे रहित चारित्र कुछ भी कार्यकारी नहीं होता, किन्तु जिस प्रकार अन्धे पुरुषका दौडना उसके पतनका कारण है, उसी प्रकार वह उसके पतनका कारण होता है, अर्थात् नरकादि गतियोंमें परिभ्रमणका कारण होता है।”

(महापुराण / २४ / १२२)

‘मैं ज्ञानमात्र हूँ’

□

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिनरात रहे तद्ध्यान महीं;
प्रशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमं पद ते वरते जयते.

□

पावन मधुर अद्भुत अहो ! गुरुवदनथी अमृत झर्या,
श्रवणो मळ्यां सद्भाग्यथी नित्ये अहो ! चिद्रस भर्या.
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्या,
गुणमूर्तिना गुणगणतणां स्मरणो हृदयमां रमी रह्यां.

□

हुं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे.

□

सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु

□

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

‘दंसणमूलो धम्मो’

सर्व संसारी जीव सुख चाहते हैं और दुःखसे भयभीत हैं। अनादिसे संसरण / जन्म-मरण करते हुए इस जीवने एक-एक करके लोकके सर्व परमाणुओंको, सर्व प्रदेशोंको, कालके सर्व समयोंको, सर्व प्रकारके कषाय भावोंको और नरक-देवादि सर्व भावोंको अनंत-अनंतबार ग्रहण करके छोड़ा है; परंतु, आज पर्यन्त कहीं भी इसे एक समयके लिये भी रंच मात्र दुःखसे निवृत्ति और समीचीन सुखकी प्राप्ति नहीं हो पायी है। यद्यपि, इस हेतु इसने अपनी मति कल्पनासे अनेक-विध प्रयोग अनंतबार किये भी हैं - पंचेन्द्रियोंके विषयोंको सुखका साधन मानकर उनका संग्रह / प्राप्तिका प्रयास किया है और उनके भोग में सुखकी कल्पना की है; तो कभी ऐसी प्रवृत्तिसे निवृत्त होनेसे सुख मानकर तदर्थ जिनोक्त बाह्य महाव्रतादि तथा ११ अंग व ९ पूर्वका अध्ययन करके अनंतबार नवमी ग्रैवेयक हो आया है। परंतु, इसे सभी साधन एक मात्र भववृद्धि और अनंत क्लेश संततिके ही साधन सिद्ध हुए हैं। अतएव दुःख निवृत्ति और समीचीन सुखका साधन कोई अपूर्व ही है, बाकी तो अनंतकालमें इस जीवने जो कुछ भी किया

वह सभी पूर्वानुपूर्व ही रहा है। अतः सुखके अभिलाषी जीवको इसका गहरा मंथन करना चाहिए कि, तत्त्वतः दुःखका मूल कारण क्या है ? समीचीन सुख क्या है ? उसकी प्राप्तिका यथार्थ साधन क्या है ?

- ऐसे जिज्ञासुओं पर परम अनुग्रह करके निष्कारण करुणावश ज्ञानियोंने अपना अनुभवसिद्ध उपाय बताया है कि - धर्म ही चतुर्गतिके अनंत दुखोंसे रक्षा करता है। यहाँ यह जिज्ञासा संभाव्य है कि "धर्म" क्या है ? समाधान है कि -

"जो प्राणियोंको संसारके दुःखसे उठाकर उत्तम सुख (वीतराग सुख) में धारण करे उसे धर्म कहते हैं। वह धर्म कर्मोंका विनाशक तथा समीचीन है।" - (र. क. श्रा. / २)

"मिथ्यात्व व रागादिमें नित्य संसरण करने रूप भाव-संसारसे प्राणिको उठाकर जो निर्विकार शुद्ध चैतन्यमें धारण कर दे, वह धर्म है।" - (प्र. सा. ता. वृ. / ७/९/९)

"गणधरादि आचार्य सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको धर्म कहते हैं।" - (र. क. श्रा. / ३)

"धर्मका मूल सम्यग्दर्शन[⊗] है।"

- (दर्शनपाहुड / मू. / २)

⊗ दृष्टि, श्रद्धा, रुचि, प्रत्यय (प्रतीति) ये पर्यायवाची हैं।

- (धवला. १/१, १, ११/१६६/७)

⊗ दर्शनका अर्थ श्रद्धा -

तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षणरूप दर्शनसे हुआ दर्शन शुद्ध कहलाता है। दर्शन शब्दसे निज शुद्धात्म श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन ग्रहण करना चाहिए। तत्त्वार्थोंका श्रद्धानरूप जो आत्माका परिणाम होता है, वह मोक्षका साधन है। -

(प्र. सा. -ता. वृ./२४०/३३३/१५); (स./सि., १/२/४)

“सम्यग्दर्शनके बिना धर्मका प्रारम्भ नहीं होता।”

- (द्वा. अनुप्रेक्षा / ध. / ६९)

“धर्म है वह सम्यक्त्वपूर्वक होता है।”

- (बारसअणुवेक्खा / ६८)

“सम्यक्त्व रहित धर्म वृथा व अकिंचित्कर है।”

- (जि. सि. कोश - २/४६७)

“सम्यक्त्व रहित धर्म परमार्थसे अधर्म है, पाप है।”

- (जि. सि. कोश - २/४६७)

- अतएव सर्वदुःखोंसे छूटनेका और समीचीन सुख प्राप्तिका एक मात्र उपाय सम्यग्दर्शन ही है, इसके बिना कोई भी उपाय अकिंचित्कर ही है। इसलिए सम्यग्दर्शन विशेष प्रयोजनीय होनेसे इसका सर्वांगीण स्वरूप जानना अति आवश्यक है।

यहाँ सम्यक्त्वकी महत्ता और प्रधानताके प्रकाशनार्थ आचार्यभगवन्तों आदिके निम्न वचनामृत उद्धृत हैं - ताकि जीव मूल प्रयोजनभूत सम्यक्त्वकी प्राप्तिका ही एकमात्र लक्ष्य रखकर उपयोगको अंतर्मुख करे -

“महात्मागण सम्यक्त्व को ही समस्त पारलौकिक अभ्युन्नतिका अथवा मोक्षका प्रथम कारण कहते हैं।”

- (उपासकाध्ययन / पृ. १३)

“सम्यग्दर्शनको यह जीव जब प्राप्त हो जाता है तब परम सुखी हो जाता है। जब तक उसे प्राप्त नहीं करता तब तक दुःखी बना रहता है।”

- (रयणसार / १५८)

“सम्यग्दर्शनके होनेपर जीवका ईषत संसार रहने पर भी वह इन परिवर्तनोंसे मुक्त हो जाता है।”

- (सर्वार्थसिद्धि २/१०/२८०/पृ. १२०)

“सम्यग्दर्शन समस्त रत्नोंमें सारभूत रत्न है, और मोक्षरूपी वृक्षका मूल है।” - (रयणसार /४)

“हे भव्यो ! तुम सम्यग्दर्शनरूपी अमृतका पान करो, क्योंकि, यह अतुल सुख निधान है, समस्त कल्याणोंका बीज है, संसार सागर तरनेको जहाज है, भव्यजीव ही इसका पात्र है। पाप वृक्षको काटने के लिए कुठार है, पुण्यतीर्थोंमें प्रधान है, तथा विपक्षी जो मिथ्यादर्शन उसको जीतनेवाला है।” - (ज्ञानार्णव /६/५९)

“वह सम्यग्दर्शन जयवंत वर्तों के जिसके बिना मति भी कुमति है और चारित्र भी दुश्चरित्र है।” - (प. पंचविंशतिका /१/७७)

“बिना सम्यक्त्वको व्रत, २८ मूलगुण, ८४००००० उत्तरगुण, १८००० शील, २२ परीषहोंका जीतना, १३ प्रकारका चारित्र, १२ प्रकारका तप, षड्वाश्यक, ध्यान व अध्ययन ये सब संसारके बीज हैं।” - (रणयसार /१२७)

“बिना सम्यक्त्वके व्रतोंका पालन करना बिना बीजके वृक्ष उगानेके समान है।” - (का अ. /पृ.२७१)

“तीनों लोकों और तीनों कालोंमें सम्यक्त्व बराबर कल्याणकारी वस्तु नहीं है।” - (का. अनुप्रेक्षा /३२७)

“सम्यग्दर्शनके अस्तित्वमें ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र होता है।” - (पु. सि. उपाय /२१)

“सम्यक्त्वके महात्म्यसे मिथ्याज्ञान, तपश्चरण, व्रत, उपशम तथा ध्यान आदि हैं वे सम्यक् हो जाते हैं। और सम्यक्त्वके बिना विष मिले हुए दूधके समान ज्ञान, तपश्चरणादि सब वृथा है - ऐसा जानना चाहिए।” - (द्रव्यसंग्रह /टी./४१/१६६/७)

“सम्यग्दर्शनके साहचर्य बिना संवर निर्जरा नहीं हो सकती, यह ध्रुव नियम है। इससे मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शनकी असाधारणता

सूचित हो जाती है। ध्यान रहे कि चतुर्थगुणस्थानसे लेकर ऊपरके सभी गुणस्थानोंमें होनेवाली विशिष्ट निर्जराका मूल सम्यग्दर्शन है।” - (गोम्मटसार /जी./२५/भा./पृ. २०)

“सम्यग्दर्शन पूज्य क्यों ? समाधान - क्योंकि सम्यग्दर्शनसे ज्ञानमें समीचीनता आती है। चारित्र ज्ञान पूर्वक होता है।”

- (सर्वार्थसिद्धि /१/१/पृ. ५)

“जो व्रत, तप और शीलसे सम्पन्न है, किन्तु सम्यग्दर्शनसे रहित है, वह कुपात्र है।” - (वसुनन्दि श्रावकाचार /२२३)

“सम्यग्दर्शन के बिना पुरुष मृतक तुल्य है।”

- (भा. पा. /१४३/२१६)

“सम्यग्दर्शनके बिना द्रव्य चारित्र तथा श्रुतज्ञान वह न सम्यग्ज्ञान है और न सम्यक्चारित्र है, यदि है तो वह ज्ञान तथा चारित्र केवल कर्म बंधनको ही करनेवाला है।”

- (पंचाध्यायी /३/७७०)

“सम्यक्त्व सचमुचमें प्रभु है इसलिए वह परम आराध्य है।” - (अनगारधर्मावृत /पृ. १५९)

“जो श्रेष्ठ पुरुष भूतकालमें सिद्ध हुए हैं, होते हैं और होंगे, वह सम्यक्त्वका महात्म्य जानो।”

- (द्वादश अनुप्रेक्षा/९०); (द्रव्यसंग्रह /टी./पृ. ७७)

“सम्यक्त्वके गुण और मिथ्यात्वके दोषोंको जानकर सम्यक्त्व रूपी रत्नको धारण कर ! यह गुणरूपी रत्नोंमें सार है, और मोक्ष रूपी मंदिरकी प्रथम सोपान है। अर्थात् चढ़नेके लिए पहली सीढ़ी है।” - (भाव पाहुड /१४७/२१८)

“सम्यग्दर्शन सर्व दुःखोंका नाश करनेवाला है, अतः इसमें प्रमादी मत बनो।” - (भगवती आराधना /७३५)

“तीन काल और तीन जगतमें जीवोंको सम्यक्त्व के समान कुछ भी कल्याणकारी नहीं है, मिथ्यात्वके समान अकल्याणकारी नहीं है।”
- (रत्नकरंड श्रावकाचार 138)

“यह सर्व गुणोंमें और रत्नत्रयमें सार है।”

- (दर्शनपाहुड /मू./२९)

“यह सम्यग्दर्शन महारत्न समस्त लोकका आभूषण है।”

- (ज्ञानार्णव /६/५३)

“सम्यग्दर्शनकी मैं भक्ति पूर्वक पूजा करता हूँ।”

- (उपा. /गा. ४९०/पृ. २२३)

- उपर्युक्त आधारों परसे यह सुनिश्चित है कि सम्यग्दर्शन ही धर्मका मूल कारण है; यही सर्वदुःखोंसे त्राण दिलानेमें समर्थ है; सुखका निधान है; कल्याणकारी है; सारभूत है; मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी है; इसके बिना सर्व व्रत - तपादिककी क्रियाएँ निरर्थक ही नहीं, अपितु संसारवर्द्धक हैं।

*** वस्तुतः सम्यक्त्वका प्रकार तो एक ही है परंतु अपेक्षासे कथनके दो भेद हैं - व्यवहार सम्यक्त्व और निश्चय सम्यक्त्व।**

“शुद्धात्मा ही उपादेय है - ऐसा श्रद्धान सम्यक्त्व है।”

- (स. सा. /ता. वृ. /३८/७२/९)

व्यवहार सम्यक्त्वके लक्षण - देव, शास्त्र व गुरु, धर्मकी श्रद्धा; आप्त, आगम व तत्त्वोंकी श्रद्धा; तत्त्वार्थ या पदार्थों आदिका श्रद्धान; पदार्थोंका विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान; यथावस्थित पदार्थोंका श्रद्धान; तत्त्वोंमें हेय व उपादेय बुद्धि; तत्त्व रुचि।

अर्थात्

“मिथ्यात्वोदय जनित विपरीत अभिनेवेश रहित पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, जीवादि सात तत्त्व अथवा जीवादि नव पदार्थ, इनका जो

श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है।”

- (पंचास्तिकाय /ता वृ. /१०७/१६९/२४)

निश्चय सम्यक्त्वके लक्षण - उपरोक्त पदार्थोंका शुद्धात्मासे भिन्न दर्शन; शुद्धात्माकी रुचि; अतीन्द्रिय सुखकी रुचि; वीतराग सुखस्वभाव ही “मैं हूँ” ऐसा निश्चय; शुद्धात्माकी उपलब्धि आदि।
अर्थात्

“इन भूतार्थरूपसे जाने गये जीवादि नव पदार्थोंका शुद्धात्मासे भिन्न करके सम्यक् अवलोकन करना निश्चय सम्यक्त्व है।”

- (समयसार /ता. व./१५५/२२०/११)

“रागादि विकल्प रहित चित्चमत्कारकी भावनासे उत्पन्न मधुर रसके आस्वादरूप सुखका धारक “मैं हूँ” - इस प्रकार निश्चयरूप सम्यग्दर्शन होता है।”

- (द्रव्यसंग्रह /टी./४०/१६३/१०)

यह द्रष्टव्य है कि निश्चय धर्मकी व्याप्ति व्यवहार धर्मके साथ है, किन्तु व्यवहार धर्मकी निश्चयके साथ नहीं। अतएव साधकको निश्चय सम्यक्त्वके साथ जितना रागांशरूप व्यवहार सम्यक्त्व है वह साथ-साथ रहता है; परंतु बिना निश्चय सम्यक्त्वके व्यवहाररूप अकेले रागादि भावों पर तो व्यवहार सम्यक्त्वका आरोप करना भी संभवित नहीं है, अपितु ऐसे अभिप्रायवालोंको तो व्यवहाराभासमें गिननेमें आता है।

* तीनों सम्यग्दर्शनोंमें सादृश्यता होती है

“दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंके क्षय, उपशम और क्षयोपशमरूप होनेसे क्रमशः तीन प्रकारका सम्यक्त्व है - क्षायिका औपशमिक व क्षायोपशमिक।”

- (ज्ञानार्णव /६/७)

“तीनों सम्यग्दर्शनोंमें यथार्थ श्रद्धानके प्रति समानता पायी जाती है ... विशेषणोंमें भेद भले ही रहा आवे, परंतु इससे यथार्थ श्रद्धानरूप

विशेष्यमें भेद नहीं पड़ता है।”

- (धवला. १ /१,१, १ ४५ /३९६/८)

*** छद्मार्थोंका सम्यक्त्व भी सिद्धोंके समान है**

“वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत जीवादि पदार्थोंके विषयमें सम्यक् श्रद्धान व ज्ञान ये दोनों गृहस्थ व तपोधन साधुओंके समान ही होते हैं। परंतु इनके चारित्रमें भेद है।”

- (पंचास्तिकाय /ता वृ. /१६०/२३१)

“जैसा सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान छद्मस्थके भया था, तैसा ही केवली सिद्ध भगवानके पाइए है। तातै ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होतें भी तिर्यचादिक वा केवली सिद्ध भगवानके सम्यक्त्व गुण समान है ”

- (मो मा. प्रकाशक /९/४७५)

*** सम्यग्दर्शनको सराग वीतराग मानना उचित नहीं**

“सम्यग्दर्शन दो प्रकारका है - सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन। प्रथम, संवेद अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि की अभिव्यक्ति लक्षणवाला सराग सम्यग्दर्शन है और आत्माकी विशुद्धि मात्र वीतराग सम्यग्दर्शन है।

- ये भेद पात्रकी अपेक्षासे किये गये हैं। किन्तु सम्यग्दर्शनको सराग और वीतराग मानना उचित नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन स्वयं न तो सराग ही होता है और न वीतराग ही। सरागताका और वीतरागताका संबंध तो कषायके सदभाव और असदभावसे है।”

- (सर्वार्थसिद्धि /१/२/१२/पृ. ७-९)

- इन दोनोंमें तात्त्विक भेद मानना भूल है। - अतएव चारित्र संबंधी रागका दोष सम्यक्त्वमें लगाना योग्य नहीं है।

- (वि. देखें : पं. ध्या./उ./८२८-८३०;९१३-९१६)

सम्यग्दर्शनको सराग और वीतराग कहना यह चारित्र प्रधानतासे

सम्यक्त्वका कथन है।

सम्यक्त्व और स्वानुभूति

धर्मके क्षेत्रमें भी अनादिसे इस जीवको व्यवहारका पक्ष रहा है या कभी अयथार्थरूपसे स्वरूप निश्चय करने पर निश्चयका पक्षाभास अर्थात् निश्चयाभास होता रहा है। परंतु आज पर्यंत यह जीव यथार्थतामें कभी नहीं आया। इसी लिए संसार परिभ्रमणचक्र चालू रहनेसे यह जीव दुःख भोग रहा है।

लेकिन, कोई आसन्न भव्य जीव अपने स्वरूपका यथार्थ निश्चय करता है तो सर्व प्रथम उसका अनादिका व्यवहारपक्ष छूटकर यथार्थ निश्चय-पक्ष होता है। परंतु जब तक वह इस निश्चयपक्षको भी नहीं छोड़ता तब तक उसे निर्विकल्प आत्मअनुभव - आत्मसुख प्राप्त नहीं होता। वह जब सर्व विकल्पोंका वमन करके पक्षातिक्रान्त होता है तभी उसे आत्मानुभूति - स्वसंवेदन होता है अर्थात् उसे सम्यग्दर्शन रत्न प्रगट हो जाता है।

अज्ञानवश ऐसी भ्रांतियाँ रहती हैं कि सम्यक्त्वके साथ स्वानुभव, स्वानुभूति, स्वसंवित्ति और आत्मसुख प्रगट नहीं होता; कई लोग इसे सातवें या बारहवें गुणस्थानमें होना मानते हैं, परंतु यथार्थतः ऐसा नहीं है। यह तो सम्यक्त्वके साथ अविनाभावीरूपसे रहनेवाला आत्मपरिणाम है। इस संदर्भमें निम्न आगम आधार ध्यातव्य है -

“जो नय आत्माको बंध रहित, परके स्पर्श रहित, अन्यत्व रहित चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्यके संयोगसे रहित, ऐसे पाँच भावरूपसे देखता है उसे... शुद्ध नय जान। इस नयके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है।”

- (स. सार/मू./१४-११; व. (पं. ध्या /उ/२२३)

“निजतत्त्वोपलब्धि बिना सम्यक्त्वकी उपलब्धि नहीं होती और

सम्यक्त्वकी उपलब्धि बिना निर्वाण नहीं होता।" - (रयणसार /९०)

“सम्यक्त्व होते ही स्वानुभूत्यावरण कर्मका नाश अवश्य होता है।” - (पं. ध्या. /उ./८५६)

“श्रद्धा और स्वानुभव इन दोनोंमें सम व्याप्ति है।”

- (पं. ध्या. /उ./४२०)

“चेतना, अनुभव उपलब्धि और वेदना एकार्थ हैं।”

- (पं. का. /ता. वृ./३९/७९)

“स्वात्मध्यानसे युक्त कोई पुरुष जहाँ तक “मैं ही यह आत्मा हूँ और मैं ही उसका अनुभव करनेवाला हूँ” - इस प्रकारके विकल्पसे युक्त रहता है, तब तक वह नय पक्षवाला कहा जाता है। किन्तु यदि वही दैववश अधिक या थोड़े कालमें निर्विकल्प हो जाता है, तो “मैं स्वयं आत्मा हूँ” इस प्रकारका अनुभव करनेसे यहाँ पर उसी समय आत्मानुभूति कही जाती है।”

- (पंचाध्यायी /पू. /६५१-६५२)

“मिथ्यात्व कर्मका रसपाक मिटने पर मिथ्यात्वभावरूप परिणाम मिटता है, तो वस्तु स्वरूपका प्रत्यक्षरूपसे आस्वाद आता है, उसका नाम अनुभव है।” - (स. सार /क./३०)

“स्वसंवेदन आत्माके उस साक्षात् दर्शनरूप अनुभवका नाम है जिसमें योगी आत्मा स्वयं ही ज्ञेय तथा भावको प्राप्त होता है।” - (तत्त्वानुशासन /१६१)

“आत्माके दर्शनमोहके अभाव होनेपर शुद्धत्माका अनुभव होता है, उसमें किसी भी चारित्रावरण कर्मका उदय बाधक नहीं होता।” - (पं. ध्या /उ./६८८)

“स्वसंवेदन प्रत्यक्षके द्वारा केवलज्ञानके अंशरूप ज्ञानकी

निर्बाधरूपसे उपलब्धि होती है।”

- (कषाय पाहुड /१ /१/ प्र. ३१/४४)

“इन्द्रिय और मन दोनोंके निरुद्ध होनेपर अतीन्द्रिय ज्ञान विशेषरूपसे स्पष्ट होता है। अपना वह जो स्वसंवेदन गोचर है उसे स्वसंवेदनके द्वारा ही देखना चाहिए।”

- (तत्त्वानुशासन /१६७)

“जो यति या गृहस्थ स्वसंवेदन ज्ञानसे जानकर निजात्माको ध्याता है उसकी मोहग्रंथि नष्ट हो जाती है।”

- (प्रवचनसार /ता. वृ./१९४)

“स्वसंवेदनगम्य आत्मसुखका वेदन ही स्वानुभव है।”

- (द्रव्यसंग्रह /टी./४२/१८४)

“आत्मासे तृप्त ऐसे तुझको वचन अगोचर सुख प्राप्त होगा और उस सुखको उसी क्षण तू ही स्वयं देखेगा, दूसरों से मत पूछ !”

- (स. सा. /आ./२०६)

“अनुभवके समय स्वयं ही विज्ञानघन हुवे होनेसे श्रुतज्ञानात्मक समस्त अंतर्जल्परूप तथा बहिर्जल्परूप विकल्पों की भूमिकाकी अतिक्रान्तताके द्वारा समस्त नय पक्षके ग्रहणसे दूर हुवे होनेसे, किसी भी नय पक्षको ग्रहण नहीं करता, वह (आत्मा) वास्तवमें समस्त विकल्पों से पर, परमात्मा, ज्ञानात्मा, प्रत्यग्ज्योति, आत्मख्यातिरूप, अनुभूतिमात्र समयसार है।”

- (स. सा./आ./१४३/२२२)

“जब नयपक्षको छोड़कर वस्तुस्वरूपको केवल जानता है तब उस कालमें श्रुतज्ञानी भी केवलीकी तरह वीतरागके समान ही होता है।”

- (स. सा./क. १४३(पं. जयचंदजी)

मोक्षमार्गमें सम्यक्त्वकी प्रधानता

एक परम आत्मदर्शन / स्वानुभव ही मोक्षका कारण है, अन्य कुछ भी मोक्षका मूल कारण नहीं है। इसके अभावमें जो भी कुछ किया जाता है वह एकान्त संसारका ही कारण है। अर्थात् आत्मानुभव, आत्मदर्शन, आत्मोपलब्धि, स्वसंवेदन आत्मानुभूति, ज्ञानानुभूति, शुद्धोपयोग, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र, आत्मस्थिरता, धर्मध्यान, स्वभावआराधना, साम्यभाव, आत्मसमाधि, आत्मसुख, रत्नत्रय, धर्म आदि अनेक संज्ञायुक्त अध्यात्म परिभाषासे आत्म परिणाम हैं। जो अखंडितरूपसे एक ही हैं, अविनाभावी हैं, युगपद उत्पन्न होते हैं, अभिन्न हैं; और यही एक मात्र मोक्षका मार्ग है।

निश्चयसे वीतराग सुखरूप परिणित निजशुद्धात्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान ज्ञान व अनुचरणरूप अभेद रत्नत्रयका जो स्वरूप है वही मोक्षमार्ग है। आत्माके ध्यानमें स्थित जीवोंको जो वीतराग परमानंद सुखानुभूति होती है वह निश्चय मोक्षमार्ग है। यही सकलकर्मके क्षयका एक मात्र कारण है।

किसी भव्यजीवको दर्शनमोह व चारित्रमोहके उपशम, क्षयोपशम, क्षय होनेपर प्रथम शुद्धात्मानुभूति - रुचिरूप सम्यग्दर्शन; और स्वसंवेदन रूप भेदज्ञान द्वारा मिथ्यात्व रागादि परभावोंसे अपने शुद्धात्माको भिन्न जाननेरूप सम्यग्ज्ञान; और साथ ही शुद्धात्मानुभूतिमें स्थिरतारूप चारित्र अंश प्रगट होता है - ये सब युगपत् उत्पन्न होते हैं और इनकी एकता ही मोक्षमार्ग है। इस मार्गमें जो गमन करता है वह मोक्षमार्गी होता है।

स्वानुभूति / सम्यग्दर्शनके अभावमें शुद्धात्माका भावात्मक परिचय ही नहीं होता है। सम्यग्दर्शनके होते ही आत्माके सर्व गुण स्वाभाविक रूपसे अपने-अपने गुणधर्मानुसार निर्मल पर्यायरूपमें परिणमित होने

लगते हैं। सम्यग्दर्शनके होते ही सर्व गुण सम्यक् विशेषण युक्त होते हैं। इसके होते ही जो भूतपूर्व ज्ञान व चारित्र था वह सम्यक् विशेषण सहित हो जाता है। अतः सम्यग्दर्शन अभूतपूर्वके समान ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको उत्पन्न करता है, ऐसा कहा जाता है।

- ऐसे मोक्षमार्गका प्रारंभ नियमसे चतुर्थ गुणस्थानसे होता है और इस मार्गमें गतिमान् करते जीवोंकी मार्गकी स्थितिनुसार आगेके गुणस्थानोंका क्रम निर्धारित है। इस मार्गमें गमन कर रहे सम्यग्दृष्टि (चतुर्थ गुणस्थानवर्ती), पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक, आगेके गुणस्थानोंमें अवस्थित आचार्य-उपाध्याय-मुनि हैं - इन सभीके नेता वीतराग सर्वज्ञ अर्हत देव हैं। अतः सभी मोक्षमार्गियोंमें सम्यग्दर्शनकी सादृश्यता है।

सम्यग्दृष्टि

जैसे धर्म प्रगट होनेसे वह जीव धर्मी कहलाता है, इसी भांति जिस आत्माको सम्यग्दर्शनरूप गुणरत्न प्रगट हुआ है, वही सम्यग्दृष्टि है।

“जिसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा समीचीन होती है - उसे सम्यक्दृष्टि कहते हैं।” - (धवला. १/१, १, १२/१७१/१)

“सम्यक्दृष्टि जीवके निश्चय ही मिथ्यात्वकर्म के अभावसे कोई अनिर्वचनीय शक्ति होती है, जिससे यह आत्मा प्रत्यक्ष होता है।” - (पं. ध्या/पू./७१०)

“जो पुरुष जीव और अजीव इनका भेद जानता है वह सम्यग्ज्ञानी होता है। रागादि दोषों से रहित वह भेदज्ञान ही जिन शासनमें मोक्षमार्ग है।” - (चारित्र पाहुड /मू./३८)

“अपनेको अपनेसे जानता हुआ यह जीव सम्यक्दृष्टि होता

हुआ शीघ्र ही कर्मोंसे छूट जाता है।”

- (परमात्मप्रकाश/मू./१/७६)

सम्यक्दृष्टिको देव शास्त्र गुरु व धर्मकी श्रद्धा, आप्त आगम व तत्त्वोंकी श्रद्धा, तत्त्वार्थ या पदार्थों आदिका श्रद्धान, पदार्थोंका विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान, यथावस्थित पदार्थोंका श्रद्धान, तत्त्वोंमें हेय व उपादेय बुद्धि, तत्त्व रुचि रूप व्यवहार सम्यक्त्वके साथ ही उपरोक्त पदार्थोंका शुद्धात्मासे भिन्न दर्शन, शुद्धात्माकी रुचि, अतीन्द्रिय सुखकी रुचि, वीतराग सुख स्वभाव ही “में हूँ” ऐसा निश्चय, शुद्धात्माकी उपलब्धि आदि निश्चय सम्यक्त्व रहता है।

उसे शुद्धात्माके उपाधि रहित स्वसंवेदनरूप भेदज्ञान द्वारा मिथ्यात्व रागादि परभावोंसे भिन्न जाननेरूप, अर्थात् जीवादि सात तत्त्वोंमें सुखादिकी अर्थात् स्वतत्त्वकी स्वसंवेदन गम्य पृथक् प्रतीतिरूप भेदज्ञान और शुद्धात्मामें ही स्वसंवेदन करनेरूप सम्यग्ज्ञान वर्तता है।

असंयतादि गुणस्थानों में सम्यक्त्व के कारण परिणामोंमें निर्मलता या आंशिक साम्यता जागृत होती है उसीको आगममें स्वरूपाचरण चारित्र या सम्यक् चारित्र कहते हैं। मोक्षमार्गमें इसका प्रथम स्थान है। शुद्धात्मानुभवसे अविनाभावी स्वरूप स्थिरतारूप चारित्र विशेष को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं। चौथे गुणस्थानमें सम्यग्दर्शनके साथ ही स्वरूपाचरण चारित्र भी आत्मामें प्रगट हो जाता है।

“चतुर्थ गुणस्थानसे सम्यग्दर्शन होता है तभी सम्यक्दृष्टि को जो चारित्रगुणकी निर्मलता जन्य (आत्मस्थिरतारूप) पर्याय प्रगट हुयी वही कर्मोंकी आस्त्रवरूप क्रियाकी रोधक है वही स्वरूपाचरण है,

वही चारित्र नामधारी है, शुद्धोपयोग है वही धर्म है।”

- (प. ध्या/उ./७६४)

“जिस काल शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति होती है उसी काल मिथ्यात्व रागद्वेषरूप जीवका परिणाम मिटता है, इसलिए एक ही काल है समय का अंतर नहीं।” - (स. सार. /क./११४)

“सम्यक्दृष्टि जीव शुद्ध चैतन्य वस्तुको निरंतर अनुभवता है - आस्वादता है। लौकिक कार्य करते हुए भी सम्यक्दृष्टिको ज्ञानचेतना रहती है।” - (वि. देखें : पं. ध्या. /उ./२७५-२७६)

“सम्यक्दृष्टिको अपने सम्यग्दर्शनके संबंधमें किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं।”

- (देखें : स. सा. /आ./२०६; (जै. सि /कोश -१/८५)

“(सम्यक्दृष्टिको) आत्माके उपयोग रहते हुए भी सम्यक्त्व रहता है और उपयोगके न रहते भी (रहता है)।”

- (पं. ध्या. /उ./८७५)

सम्यक्दृष्टिके मूलगुण व उत्तरगुण

सम्यक्दृष्टिके ४८ मूलगुणोंकी तथा १५ उत्तरगुणोंकी चर्चा कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा ३२६की टीकामें की गयी है - वह भी सम्यक्दृष्टिकी विशिष्टताका विचार करनेमें सहायक बने इसी आशयसे प्रस्तुत है -

मूलगुण - लोक-देव-गुरु मूढता को छोड़नेसे ३ गुण; ज्ञान-पूजा(प्रतिष्ठा)-कुल-जाति-बल-ऋद्धि-तप-शरीरके गर्व(मद) का त्यागसे ८ गुण; कुदेव, कुदेवके भक्त, कुज्ञान, कुज्ञानधारी, कुलिङ्गि (कुगुरु) और कुगुरुकी सेवा करने वाले इन छ अनायतनोंके त्यागसे उत्पन्न ६ गुण; निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्यगुण और प्रभावना ये ८ गुण; शंका, कांक्षा,

विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्य दृष्टि संस्तवरूप पाँच अतिचारोंसे बचने रूप ५ गुण; लोक-परलोक-अरक्षा-अगुप्ति-मरण-वेदना-आकस्मिक-भय इन सातों भयोंके त्यागसे उत्पन्न ७ गुण; माया-निदान-मिथ्यादर्शन शल्य इन तीनों शल्योंके त्यागरूप ३ गुण; संवेग निर्वेद, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, अनुकम्पा और वात्सल्य ये ८ गुण = ४८।”

उत्तरगुण - मद्य, मांस, मधु और पाँचों उदुम्बरफलोंका त्याग एवम् जुआ-मांस-मदिरा-वेश्यागमन-शिकार-परस्त्रीगमन-चोरी इन सातों व्यसनोंके त्यागसे उत्पन्न १५ गुण।” - इस प्रकार उक्त ४८+१५=६३ गुणरत्नोंसे विभूषित सम्यक्दृष्टि सबसे पूजित होता है।

सम्यक्दृष्टिकी विशेषतायें और

उसकी पवित्र अध्यात्मपरिणति विषयक महिमा

“जैसे कमलिनीका पत्र अपने स्वभावसे ही जलसे लिप्त नहीं होता है, वैसे ही सम्यक्दृष्टि सत् पुरुष है वह अपने भावसे ही क्रोधादिक विषय कषाय और इन्द्रियोंके विषयोंसे लिप्त नहीं होता है।”

- (भाव. पा./मू./१५४/२२४)

“दर्शनसे भ्रष्ट ही भ्रष्ट है चारित्रभ्रष्ट वास्तवमें भ्रष्ट नहीं।”

- (भगवती आराधना /मू./७३९)

“जिसको सम्यक्त्वका प्राधान्य है - वही पंडित है और वही त्रिलोकमें प्रधान है।”

- (योगसार /९०)

“जो पुरुष दर्शनसे शुद्ध है, वह ही शुद्ध है।”

- (पंच. वि. मो. पा. /३९)

“जिसको विशुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है - वह पुण्यात्मा

‘मुक्त’ है।”

- (ज्ञानार्णव /६/५७)

“अपार संसारसमुद्र तारनेवाला और जिसमें विपदाओंको स्थान नहीं, ऐसा यह सम्यग्दर्शन जिसने अपने वश किया है उस पुरुषने कोई अलभ्य संपदा ही वश करी है।”

- (अमितगति श्रावकाचार /२/८३)

“गणधरादिदेव सम्यक्त्व सहित चाण्डालको भी भस्ममें ढकी हुई चिनगारीके समान ‘देव’ कहते हैं।”

- (रत्नकरंडश्रावकाचार /२८)

“सम्यक्दृष्टि जीव निःशंक होते हैं, इसलिए निर्भय होते हैं। क्योंकि वे सप्त भयोंसे रहित होते हैं, इसलिए निःशंक होते हैं।”

- (समयसार /मू./२२८)

“वह तो स्वयं निरंतर निःशंक वर्तता हुआ सहज ज्ञानका सदा अनुभव करता है।”

- (स. सा. /आ./२२८/क-१५५)

“सम्यक्दृष्टि सर्वज्ञदेवके उपदेश - अनुसार चलता है।”

- (स्याद्वादमंजरी /२३/२७४/१६)

“दर्शनापेक्षासे तो श्रमणका तथा सम्यक्दृष्टि गृहस्थको शुद्धात्माका ही आश्रय है।”

- (प्र. सार /पं. जयचंदजी /२५४)

“(क्षमादि) ये दशधर्म अविरत सम्यक्दृष्टि आदिके जैसे क्रोधादिकी निवृत्ति होय तैसे तथा संभव होय हैं, अर मुनिनिके प्रधानपने होय हैं।”

- (राजवार्तिक /हिन्दी /९/६/६६८)

“सम्यक्त्वका अविनाभावी प्रशमभाव सम्यक्दृष्टिका परम गुण है”

- (देखें : पं. ध्या. /उ./४२७-४३०)

“सम्यक्दृष्टिको पक्षपात नहीं होता।”

- (स्या. मं. /मू./श्लो./३०/३३४)

“संसारि विवेकी जन संसारि पर्यायमें रागादि विकल्प रहित समाधिके द्वारा निजआत्माको देखते हैं।” - (प्र. सा./ता. वृ. /३३)

“भाव पाँच हैं, जिनमें यह परमपंचमभाव (पारिणामिकभाव) निरंतर स्थायी है। संसारके नाशका कारण है और सम्यक्दृष्टियोंके गोचर है।” - (नियमसार /ता. वृ. /१७८/क. २९७)

“सम्यक्दृष्टि जीवका अपनी आत्माको जाननेवाला स्वसंवेदन प्रत्यक्षज्ञान शुद्ध और सिद्धोंके समान होता है।”

- (पं. ध्या. /उ./४८९)

“जो जीव निश्चयसे (वास्तवमें) श्रुतज्ञानके द्वारा इस अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्माको सम्मुख होकर जानता है, उसे लोकको प्रगट करनेवाले ऋषीश्वर श्रुतकेवली कहते हैं।”

- (स. सार./आ./९-१०; प्र. सा. /आ./३३)

“आत्माके स्वरूपको जाननेवाले और आवरण रहित अनंतज्ञान और अनंत दर्शनरूप शक्तिसे युक्त आत्माका स्मरण करनेवाले सम्यक्दृष्टियोंके ज्ञानमें पापका क्षयकारीपना पाया जाता है।”

- (धवला. १/१,१,१./३८/४)

“चतुर्थ गुणस्थानके योग्य आत्मभावनाको नहीं छोड़ता हुआ वह देवलोकमें काल गँवाता है। पीछे स्वर्गसे आकर मनुष्यभवमें चक्रवर्ती आदि विभूतिको प्राप्त करके भी, पूर्वभवमें भावित शुद्धात्मभावनाके बलसे मोह नहीं करता है।”

- (पं. का./ता. वृ./१७०)

“(जहाँ) मिथ्यादृष्टिके अभिप्रायकी विपरीतताके कारण उनका समस्त धर्म, कर्म और वैराग्यादि अकिंचित्कर व संसार वर्धक है। (वहाँ) सम्यक्दृष्टिकी क्रियायें बाहरमें उनके समान होते हुए भी

अंतरंग विचित्रताके कारण कुछ अन्य ही रूप होती है।”

- (जै. /सि./को-३/३१२)

“अहो ! देख ज्ञानीपुरुषोंके इस अलौकिक चारित्रका कौन वर्णन कर सकता है। जहाँ अज्ञानी बंधको प्राप्त होता है, उसी आचरणसे ज्ञानी कर्मों से छूट जाता है।” - (ज्ञा. ३२/३८)

“जो कर्म असंख्यात कोटि भवनिकरि बंध किया सो कर्म रज सम्यक्त्वकी उत्पत्ती विषे ज्ञानी एक समयमें क्षिपावे है, निर्जरा करे है।” - (भ. आ. /७२३/२१५)

“स्वरूपाचरण चारित्रका धारक और तत्त्वोंका ज्ञाता सम्यक्दृष्टि व्रतोंका पालन न करते हुए भी मुक्तिके मार्गमें स्थित है।”

- (उपा./२४२/११७)

“दर्शनमोहसे रहित गृहस्थ भी मोक्षमार्गमें स्थित है।”

- (र. क. श्रा./३३)

“शुद्धात्मभावनासे उत्पन्न निर्विकार यथार्थ सुख रूपी अमृतको उपादेय करके संसार, शरीर और भोगोंमें जो हेय बुद्धि है, वह सम्यग्दर्शनसे शुद्ध चतुर्थ गुणस्थावाला व्रत रहित दार्शनिक है।”

- (द्र. सं./टी./४५/१९४/१०)

“आत्मासे उत्पन्न सुख अपूर्व और समीचीन होता है - ऐसा जिसके हृदयमें दृढ़ विश्वास हो गया, वह तत्त्वज्ञ है।”

- (प. पं. /१५०)

“सम्यक्दृष्टि जीव भेदविज्ञानी होता है, वह इन पर्यायोंको कर्मोदय जन्य मानता है और आत्माके चैतन्य स्वरूपका निरंतर अनुभव करता रहता है। तथा पर पदार्थोंको अपनी आत्मासे भिन्न जड़रूप ही निश्चय करता है।” - (स. तंत्र /पृ. ३)

“सम्यक्दृष्टि जीवके प्राथमिक अवस्थामें यद्यपि कदाचित् राग

होता है तथा उसमें उसका अनुबंध न होनेसे, वह उसका कर्ता नहीं है।” - (मू. आ./टी./१०६)

“सम्यक्दृष्टिके मिथ्यात्व सहित राग नहीं होता।”

- (स. सार./क. १३७/गा. २००)

“...इतनी विशेषता है कि व्यक्त रागमें भी रागके रागका अभाव होनेके कारण सम्यक्दृष्टि वास्तवमें वैरागी होता है।”

- (वि. देखें : पं. ध्या. /उ./२५९; स. श. /मू./६७)

“जब जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, तब चारित्र मोहके उदयमें बंध होता है, परंतु बंध शक्ति हीन होता है, इसलिए बंध नहीं कहलाता।”

- (स. सार./क. १२९)

“...शुद्धात्मानुभूति होनेपर शास्त्र पढ़ने की कुछ अटक नहीं।”

- (स. सार./क./टी./१४)

“जो अपनी आत्माको इस अपवित्र शरीरसे निश्चयसे भिन्न तथा ज्ञायक स्वरूप जानता है, वह सब शास्त्रोंको जानता है।”

- (का. अनु./मू./४६४)

“सम्यक्त्व प्राप्त करता है तभी मोक्षोपयोगी प्रयोजनभूत सात तत्त्वोंका श्रद्धान व परिज्ञान हो जाता है और परद्रव्योंसे उदासीन भावरूप चारित्र हो जाता है।”

- (स. तंत्र /पृ. ३)

“...अतएव चतुर्थ गुणस्थानसे १२ वें गुणस्थान तकके सभी जीवोंकी अन्तरात्मा और उसके ऊपरके जीवोंकी परमात्मा संज्ञा है। किन्तु अंतरात्मा और परमात्मा दोनों ही की सामान्यता 'जिन' संज्ञा है।”

- (गो. सा./जी./गा. ६४/पृ. ४७)

“जो पुरुष परमात्माको शरीरसे जुदा केवल ज्ञानकर पूर्ण जानता है वही परम समाधिमें तिष्ठता हुआ पंडित अर्थात् अंतरात्मा है।”

- (परमात्माप्रकाश /मू./२/१४)

“जिस प्रकार कोरे घड़ेपर पड़ी हुई रज उसके साथ बंधको प्राप्त नहीं होती, उसी प्रकार पापके साथ लग्न भी सम्यक्दृष्टि बंधको प्राप्त नहीं होता।” - (द. पा./टी./७/७/८)

“जिस प्रकार स्वर्ण कीचडके बीच रहता हुआ भी कीचडसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी विषय भोग करता हुआ भी विषयोंमें लिप्त नहीं होता।” - (यो. सा./अ./४/१९)

“निज शुद्धात्माकी रुचिरूप सम्यक्त्वका जो साधक है ऐसा तीन मूढताओं और २५ मलसे रहित तत्त्वार्थके श्रद्धानरूप लक्षण वाले दर्शनसे जो शुद्ध हैं वे पुरुष दर्शनशुद्ध कहे जाते हैं।” - (प्र. सार/ता. वृ./८२/१०४/१८)

“असंयत सम्यक्दृष्टि... जीवोंके धर्मध्यानकी प्रवृत्ति होती है, ऐसा जिनवरदेवका उपदेश है।” - (ध. १३/५,४,२६/७४/१०)

“जो पुरुष साक्षात् रत्नत्रयको प्राप्त न होकर ध्यान करना चाहता है, वह मूर्ख आकाशके फूलोंसे वन्धापुत्रके लिए सेहरा बनाना चाहता है।” - (ज्ञानार्णव./६/४)

“मिथ्यात्व तथा रागादिको जीतने के कारण असंयत आदि एकदेशी जिन हैं।” - (द्र. सं. /टी./१/५/१०)

“सासादन गुणस्थानसे लेकर क्षीण कषाय गुणस्थान पर्यंत एकदेश जिन कहलाते हैं।” - (प्र. सा. /ता. वृ./२०१/२७१/१३)

“जिन शब्द मध्यदीपक है इससे असंयत सम्यक्दृष्टिसे लेकर अयोगी पर्यंत सभी जिन होते हैं।” - (गो. सा. जी/१०/पृ. ८)

अतः सम्यक्दृष्टिकी गुण - प्रशंसाके लिए कहाँतक लिखा जाए ? अतएव, कथित विषयके आलोडन हेतु (सम्यक्त्वदशाकी पूर्ववर्ती स्थिति पर-से सम्यक्दृष्टिकी गुण - मीमांसा / मूल्यांकन हेतु) पठनीय है -

“अपूर्वकरण परिणामकों प्राप्त प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौं सन्मुख सातिशय मिथ्यादृष्टि ते 'जिन' कहिये।” (कर्मरूपी वैरिनिकों जीते सो जिन) - (गो. सा. /जी./स. चं./पृ. १६)

“...इस तरह जब यह जीव अधःकरणरूप परिणामोंको उल्लंघन करके अपूर्वकरणरूप परिणामोंको प्राप्त होता है तब वह जिनत्व की पहली सीढ़ी पर है, ऐसा समझना चाहिए। यही से जो कर्मरूपी शत्रुओंको जीते उसे जिन कहते हैं, इस व्याख्याके अनुसार जिनत्वका प्रारम्भ होता है।” - (प. खण्डागम / प्रथमखण्डके आधारपरसे)

सम्यक्दृष्टि 'एकदेशजिन' 'जिन' व श्रुतकेवली है, उसके सब भाव ज्ञानमयी हैं, वह रागी भी विरागी है, वह सदा निरास्रव व अबंध है, कर्म करता हुआ भी कर्म नहीं बाँधता, विषय सेवता हुआ भी व असेवक है, उसके सब कर्म निर्जराके निमित्त हैं, अनुपयुक्तदशामें भी उसे निर्जरा होती है, उसकी कर्म चेतना भी ज्ञान चेतना है, वह कर्म करता हुआ भी अकर्ता है, उसके कुध्यान भी कुगतिके कारण नहीं, वह वर्तमानमें ही मुक्त है, सम्यक्दृष्टिके पुण्य व धर्ममें अंतर है, उसीको सच्ची भक्ति होती है, सम्यक्दृष्टिका ज्ञान प्रमाण है, सम्यक्दृष्टिको आत्मानुभव व उसकी प्रत्यक्षता है, उसको पक्षपात नहीं होता, सम्यग्दृष्टि सर्वथा अत्रती नहीं है, इत्यादिक अनेक विशिष्टताओंका उल्लेख आचार्य भगवन्तोंने किया है।

सम्यग्दृष्टिके संबंधमें कविकी निम्न प्रस्तुतियाँ भी परिशीलन योग्य हैं -

“चक्रवर्तीकी सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग,
काग वीट सम गिनत है सम्यग्दृष्टि लोग।”

“चिन्मूरत द्गधारीकी मोहे रीत लगत है अटापटी,
बाहिर नारकी कृत दुःख भोगे अनंतर सुखरस गटागटी।”

सम्यग्दृष्टिकी अंतरंग दशा कोई अगम्य, अगोचर और अलौकिक है, उसकी ऐसी दशाका माप बाहरसे करना असंभव है। उसकी अंतरंग - बहिरंग दशा आश्चर्यकारी है। उसको किसी भी परपदार्थमें इष्ट - अनिष्टताका अभिप्राय, सुखबुद्धि, स्पृहा, रुचि, रस, आकर्षण, अधिकता, कौतूहल आदि नहीं रहता / नहीं होता है। कारण कि, समस्त लोकेषणाके अभावसे, सर्व प्रकारकी निस्पृहासे तथा वैतृष्य भावके साथ अपने आत्मतत्त्वकी अधिकायी और अवलम्बनसे ही उसको ज्ञान दशा प्रगट हुयी है। वह अंदर ही अंदर सर्व भोगादिकसे उदासीन रहकर, उनसे हटकर, व्रतादि धारण करनेकी भावना* करता रहता है।

सर्व ज्ञानियोंका अभिप्राय तो वर्तमानमें ही पूर्ण स्थिर (अपने स्वरूपमें) रह जानेका रहता है, एक समयका विलम्ब भी पोषता नहीं। सम्यग्दृष्टि अपने स्वरूपके प्रति झुके रहता है; और अपने परिपूर्ण निर्दोष स्वभावके भानसे उसे जो अतिशयकारी ज्ञानउद्योत प्रगटा है, उसके आलोकमें वर्तमानमें अपनी पर्यायमें उदयवश हो रहे अपने दोषोंको भी निरंतर जानता है। उसको हेय - उपादेय संबंधी विवेक प्रगट हुआ है और निरंतर जागृति रहती है, जिससे अपनेमें (दशामें) उत्पन्न होते दोषोंके लिए उसकी निंदा - गर्हादिका परिणाम भी उसी समय साथ-साथ चलता रहता है। उसको भेदज्ञान और वैराग्य अखण्ड रूपसे वर्तता है। - ऐसी अलौकिक दशारूप अभ्यन्तर चारित्र और ज्ञान, उसे सम्यग्दर्शनके साथ ही साथ उत्पन्न होता है, अर्थात् वह अविनाभावी है। उसकी ज्ञायक-परिणति - जिसमें सर्व गुणोंका रस - अंश रहता है, लगातार स्वसंवेदनको

वृद्धिगत होते हुए, उसकी धारा अविच्छिन्न रूपसे चलती रहती है।

सम्यग्दृष्टिकी दृष्टिमें अपना निज परमात्मा है; ज्ञानमें पूर्ण स्वरूपका तथा व्यक्त पवित्रताका तथा शेष अशुद्धि आदिका ज्ञान है; आंशिक स्थिरता जन्य सुख है, उसका वेदन है; और जितना चारित्रमोह वश रागादिमें जुड़ान है, उतना उसको दुःखका भी वेदन है। उसे सर्व गुणोंका अंश (शुद्धि) प्रगट हुआ है। श्रीमद् राजचंद्रजीने सम्यक्त्वकी परिभाषा यही की है कि 'सर्व गुणांश ते सम्यक्त्व'

सम्यग्दृष्टिको अपने अनंत ज्ञान-सुख आदि अनंत गुणोंका अक्षय अमाप अनुपम भंडार निज श्रद्धा ज्ञान में है, परंतु वर्तमान पर्यायमें उसका अनंतवाँ भाग ही व्यक्त हुआ होनेसे उसे कदापि संतोष नहीं होता है, अपितु उसको निरंतर ऐसी खटक रहती है कि अभी तो बहुत कुछ शेष है।

आचार्य महाराजने सम्यग्दर्शनकी पूर्व क्षणवर्ती पर्यायको संप्राप्त जीव को 'जिन' संज्ञा दी है, तथा सभी आचार्योंने मुक्त कंठसे सम्यक्दृष्टि की अध्यात्म परिणतिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जिसका उल्लेख आगे कर चुके हैं; तो इस परसे स्वतः ही उसकी विशिष्टता और महत्ता अन्वेषणीय विषय हो जाती है।

मोक्षमार्गमें विचरण करते महात्माओंने अविरत सम्यक्दृष्टि को भी वंदनीय, पूज्यनीय, नमस्कारणीय बताया है। इसी संदर्भमें कुछ आगमाधार प्रस्तुत हैं -

आचार्य भगवान फरमाते हैं कि "शुद्ध-अशुद्धकी जो कल्पना

*सम्यग्दृष्टिकी अंतरंग भावनाके परिचय हेतु पठनीय है - 'अपूर्व अवसर क्यारे आवशे....'
-(श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ)

वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है, सम्यक्दृष्टिको तो सदा (ऐसी मान्यता होती है, कि) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागमके अतुल अर्थको सारासरके विचारवाली सुंदरबुद्धि द्वारा जो सम्यक्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वंदन करते हैं।” - (नियमसार /श्लो./७२)

“वह सम्यक्दृष्टि जीव शुभ - अशुभरूप अनेक क्रिया विकल्पका संग्रह करता नहीं, कारण कि इनसे कार्य सिद्धि नहीं होती। और कैसा है ? “अचिन्त्य शक्ति” वचन गोचर नहीं है जिसकी ऐसा है; और कैसा है ? “देव” परम पूज्य है।” - (समयसार/क./१४४)

“निर्मल सम्यग्दर्शन धारण किया जाता है, वह गृहस्थ अवस्था विद्वानोंके लिए (पूज्य) पूजने योग्य है।” - (प. पंचविंशतिका/गा. १३/पृ. ७)

“जीव, विशुद्ध सम्यक्त्वको कल्याणकी परंपरा सहित पाते है, इसलिए सम्यग्दर्शन रत्न है, वह सुर - असुरोंसे भरे लोकमें पूज्य है।” - (मूल गाथामें ‘अग्धेदि’ /अर्ध्यते’ शब्द है) - (दर्शनपाहुड़ /मू./३३)

“...सम्यक्त्वगुणप्रधानः स पुमान् देवेन्द्रनरेन्द्रवंदितो भवति, देवेन्द्राः सौधर्मन्द्रादयः नरेन्द्राः चक्रवर्त्यादयः तैः सम्यक्दृष्टिर्नरः वन्दितः नमस्करणीयः पूजनीयो भवति।...” - (कार्तिकेयानुप्रेक्षा /टी./गा. ३२६/पृ. २३३)

“गुण रहित हो उसे कौन वन्दे, गुण बिना प्रगट मुनि नहीं, श्रावक भी नहीं। मुनि, श्रावक पणा तो सम्यग्दर्शन - ज्ञान - चारित्रसे होता है, इसलिए इनके धारक हैं, वही वंदने योग्य है।” - (दर्शनपाहुड़ /मू./२७)

“जो (मुनि) आत्मामें लीन हैं वह तो दूर ही रहे। किन्तु जो (सम्यक्दृष्टि) उसका चिंतन मात्र करता है उसका जीवन प्रशंसाके योग्य है, वह देवोंके द्वारा पूजा जाता है।”

- (प. पंचविशतिका /गा. ६२/पृ. १२२)

नाटक समयसार /६/पृ. ६ में आत्मज्ञ पं. बनारसीदासजी कहते हैं -

सम्यक्दृष्टिकी स्तुति

“भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके घट,
सीतल चित्त भयौ जिम चंदन।
केलि करै सिव मारगमें,
जग माहिं जिनेसुरके लघु नंदन॥
सत्यसरूप सदा जिन्हकै,
प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात - निकंदन।
सांतदसा तिन्हकी पहिचानि,
करै कर जोरि बनारसी वंदन।”

* ब्रह्मविलासमें भैया भगवतीदासजीने कहा है -

“सम्यक्वंत स्वभावधर जीव जगत महि हों हि जित।
तित तित त्रिकाल वंदित भविक भाव सहित शिरनाय
नित।”

* श्री दौलतरामजी छहढालामें लिखते हैं कि -

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दर्शन सजै हैं;
चरित मोह वश लेस न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।
गेही, पै गृहमें न रचै, ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है;
नगरनारिको प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥३/१५॥
ध्यातव्य है कि, जैसे पर्यायके बिना द्रव्यका और द्रव्यके बिना

पर्यायका; धर्मके बिना धर्मीका और धर्मीके बिना धर्मका: गुणोंके बिना गुणीका और गुणीके बिना गुणोंका कोई स्वतंत्र अस्तित्व असंभवित है जैसे ही सम्यक्दृष्टिके बिना सम्यक्त्वके और सम्यक्त्वके बिना सम्यक्दृष्टिके अस्तित्वकी कल्पना आकाश-कुसुमवत् ही है। जिस आत्मामें सम्यग्दर्शनादि गुण प्रगट हुए हैं उसे ही सम्यक्दृष्टिकी संज्ञा संप्राप्त होती है। अतः

“सम्यग्दर्शनरूप धर्मकी पूजामें तद् धर्मके धारक धर्मीकी पूजा सन्निहित है। इसी भाँति सम्यक्दृष्टिकी पूजा वस्तुतः सम्यग्दर्शन - रत्नकी ही पूजा है।”

प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंमें आचार्य भगवन्तोंने अविरत सम्यक्दृष्टिको नमस्कारादि करने संबंधी अनेक दृष्टान्त दिये हैं। परंतु यहाँ सर्व विदित निम्न दृष्टान्त द्रष्टव्य है -

सभी तीर्थकरोंका जन्म अविरत / असंयत गुणस्थानकी अवस्थामें ही होता है। उनके गर्भ-जन्मादि सभी महोत्सव देवों द्वारा मनाये जाते हैं। उनके जन्मोत्सवके समय स्वयं सम्यक्दृष्टि इन्द्र और इन्द्राणी द्वारा की गयी भक्ति आदि जगतके सभी जीवों को अनुकरणीय है। इनके द्वारा तीन प्रदिक्षणा देना, नमस्कार करना, अभिषेक करना। स्तुति, भक्ति, नृत्य आदि (जो कि द्रव्य पूजाके* भेद हैं) करना सर्व विदित ही है।

(उल्लेखनीय है कि, प्रचलित रुढिवश कई लोग जल-चंदनादि अष्टद्रव्योंसे पूजा करना ही द्रव्यपूजा मानते हैं; किन्तु यथार्थतः द्रव्यपूजाके अनेक प्रकार हैं।)

* पूजा विधिके पर्यायवाची शब्द ये हैं :-

अध्वर (धार्मिक संस्कार); इज्या (दान); क्रतु (यज्ञ) पूजा आदर, सम्मान, श्रद्धांजलि, आराधना); मह (आहूति) मरव (यज्ञविषयक कृत्य); यज्ञ (पूजाका कार्य); याग (यज्ञ; सपर्या (अर्चना, सेवा, परिचर्या, पूजा, सम्मान)। - (महापुराण/६७/१२३)

यहाँ कोई यह कहे कि भावी नैगमनयकी दृष्टिसे ऐसी प्रवृत्ति इन्द्र द्वारा की जाती है, तो उल्लेखनीय है कि इस न्यायसे तो सभी सम्यक्दृष्टि अर्हंत हैं।

गवेषणीय है कि, सम्यक्दृष्टि इन्द्रने यदि दर्शन पाहुड़ / गा. /२६... "असंजदं ण वंदे" के सिद्धांतका उल्लंघन किया होता तो वह मिथ्यादृष्टि हो जाता; परंतु वह तो क्षायिक - सम्यक्दृष्टि है।

अतएव जो लोग उक्त उद्धरणको सम्यक्दृष्टिके लिए प्रयक्त करते हैं, वह यथार्थ नहीं है। क्योंकि वहाँ प्रकरण गृहस्थबेषी श्वेताम्बरादिका तथा वस्त्र रहित मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी अर्थात् सम्यक्त्व विहीन भाव असंयमी मुनि का है। पूर्वापर संदर्भको मिलान करने पर तथा इसी ग्रंथकी गाथा २७ व ३३ के आलोडन से भी उक्त गाथाकी यही विवक्षा स्पष्ट है।

- वह प्रकरण मुमुक्षु कोटि का है, अतएव यदि किन्हींको असंयत सम्यक्दृष्टिको नमस्कार - वंदनादिक करना अन्यथा प्रतीत होता हो तो उन्हें अपनी मान्यता का आत्महितार्थ अन्वेषण करना चाहिए।

नमस्कार - वंदनादि क्यों और किसे ?

"स्वकीय निश्चय रत्नत्रयकी शुद्धि निश्चय विनय है और उसके आधारभूत पुरुषोंकी भक्तिके परिणाम व्यवहार विनय हैं।"

- (प्र. सार/ता. वृ./२२५/३०६/२३)

"जो जिस गुणकी प्राप्तिका इच्छुक होता है वह उस गुणसे

* आगममें द्रव्यपूजा के कई भेद बताये हैं - अभिषेक करना, नैवेद्य आदि चढाना, तीन प्रदक्षिणा देना, नमस्कार करना, तीनों संध्याओंमें उपासना करना सम्मुख खड़े होना, वचनों द्वारा स्तवन कीर्तन आदि करना। (वि. देखें : महापुराण/३८/२७-३३; भ. आराधना/वि./४७/१५९/२१)

युक्त पुरुषको नमस्कार करता है।" - (समाधि तंत्र/पृ ४)

जिनमें गुण प्रगट हैं उनके बहुमान, भक्ति, पूजा, आराधनादिसे आत्मार्थी मुमुक्षुकी भावना स्फुरायमान होती है, तथा आत्मशुद्धि प्रगट होनेका अवकाश बनता है। अतः प्रत्येक आत्मार्थी अपनी-अपनी प्रकृति व योग्यतानुसार निज मूल गुण प्रगट करने व परिणतिको विशुद्ध करने हेतु विभिन्न प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें संलग्न होता है जिनका आधराभूत स्वरूप सत्देव - गुरु - शास्त्र सत्पुरुषकी विनय-भक्ति-पूजा-आराधना ही है।

नमस्कारके दो प्रकार हैं - एक अभिप्रायरूप और दूसरा अभिप्राय पूर्वक प्रवृत्तिरूप। उच्चपद स्थित अपनेसे हीनपद स्थितकी गुणप्रशंसा - अनुमोदन अभिप्रायरूप नमस्कार है; यथा : अनादि नमस्कार महामंत्रके स्मरणमें गणधरदेवादि द्वारा अपनेसे हीनपद स्थित सर्व साधुओंको अभिप्रायरूप नमस्कार होता है; उसी भाँति ऊपरमें उद्धृत नियमसार /श्लोक /७२ में भी अभिप्रायरूप नमस्कार है। परंतु अपनेसे उच्चपद स्थितको अभिप्राय पूर्वक प्रवृत्तिरूप नमस्कार किया जाता है।

“नमस्कार करनेमें दृष्टि प्रधानतया गुणोंकी ओर रहती है, अवस्थाभेदकी प्रधानता नहीं है। जिसके समीप धर्म-मार्ग प्राप्त करें उसके समीप विनय युक्त होकर प्रवृत्ति करनी चाहिए। तथा उसका शिरपंचक अर्थात् मस्तक, दोनों हाथ और दोनों जंघाएँ इन पंचागोंसे तथा मन, वचन, कायसे निरंतर सत्कार करनी चाहिए।”

(षट्खण्डागम /१,१,१/पृ. ५५)

परंतु “जाकै धर्म नहीं तिसतैं धर्मकी प्राप्ति नहीं ताकूं धर्म-निमित्त काहां कूं वन्दिए।” - (दर्शनपहुड़ /२/४/१९)

एवम् “श्रमणाभाषोंके प्रति अभ्युत्थानादिक प्रवृत्तियाँ निषिध्य ही

हैं।" - (प्र. सा. /ता. वृ. /२६३) में यह उल्लेख है।

विवेचनीय है कि, जिनमें सम्यग्दर्शनादि गुण प्रगट नहीं है, फिर भी धर्म-निमित्त अथवा लोकेषणावश नमस्कारादिकी प्रवृत्ति अवगुणरुचिकी द्योतक है; और यह व्यक्ति पूजा, व्यक्ति राग और अवगुण समर्थन / अनुमोदनरूप महा दोष है। और ऐसे कृत्यसे दर्शनमोह - रस विशेष वृद्धिगत होता है।

अतः जो मोक्षके कारणभूत गुणोंसे संयुक्त होता हैं, वही वंदनीय - नमस्कारणीय - भक्तियोग्य है।

“सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी तथा सम्यक्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और चारित्रवानोंकी भक्ति करना भक्ति है।” - (का. अनुप्रेक्षा /३२६/पृ. २३२)

सम्यक्त्व - विराधक भाव ?

यह तो एक तथ्य है, कि अनंत संसारकी परंपरारूप क्लेश संततिका एक मात्र निमित्त कारण मोहनीय कर्म है। यहाँ यह प्रश्न संभवित है कि कर्म तो अनेक हैं, फिर एक मोहनीयको ही ऐसी प्रमुखता क्यों ? - वस्तुतः कर्म तो अनंत प्रकारके हैं परंतु उनका मुख्यरूपसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंमें समावेश किया गया है; और इन आठोंमें मोहनीय ही बलवान होनेसे जिनागममें उसीकी प्रमुखता स्वीकारी है। यथा -

“...बाकीके समस्त कर्म मोहके ही अधीन हैं। मोहके बिना शेष कर्म अपने-अपने कार्यकी उत्पत्तिमें व्यापार करते हुए नहीं पाये जाते हैं। जिससे कि वे भी अपने कार्यमें स्वतंत्र समझे जाए। इसलिए सच्चा अरि मोह ही है, और शेष कर्म उसके अधीन हैं।” - (प. खं / जी. / १,१,१ / २२ /पृ. ४४)

“कर्म बंधके पाँच कारण हैं - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद,

कषाय और योग। इनमें मिथ्यात्व और कषाय प्रधान हैं, क्योंकि ये मोहनीयकर्मके भेद हैं और सब कर्मोंमें मोहनीय कर्म ही प्रधान और बलवान है। उसके अभावमें शेष सभी कर्म केवल निस्तेज ही नहीं हो जाते, किन्तु संसार परिभ्रमणका चक्र ही रुक जाता है।”

- (स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा /गा. /६७/पृ. ३२)

ऊपर चर्चित मोहनीयके दो भेद हैं जिनमें दर्शनमोहके अत्यंत बलवानपनेकी चर्चा आगममें उपलब्ध है। संसार परिभ्रमण संबंधी समस्त कारणोंमें एकमात्र प्रमुख स्थान दर्शनमोहका है, यह आचार्य भगवन्तोंका सर्वमान्य कथन है। पूज्य गुरुदेवश्री कहानजी स्वामीके सर्व प्रवचनोंका केन्द्र विषय “दर्शनमोहकी भयानकता तथा इसके प्रतिपक्षी सम्यक्त्वकी महत्ता, और दर्शनमोहके नाश तथा सम्यक्त्व प्राप्ति की विधि” रहा है। धर्मात्माओंने जीवोंपर निष्कारण करुणा करके मूलभूत प्रयोजनकी बात यह बतलायी है कि” अहो ! अनादि विपर्याससे समीचीन साधनको अंगीकार न करनेके फलस्वरूप अकथनीय दुःखोंको भोग रहे। हे जीव ! अब तो तू सर्व शक्तिको केन्द्रित करके दर्शनमोहको जीत करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ! अन्य साधनोंमें अपनी शक्ति और समयका किंचित् भी दुरुपयोग मत कर !” - यहाँ दर्शनमोहकी प्रबलताके संदर्भमें ‘भगवती आराधनाके’ कुछ अंश प्रस्तुत हैं :-

“दर्शनमोहका उदय अनंतानंत जन्म मरण बधावै.... मिथ्यादर्शन अनंतानंत भव पर्यंत अचेत करि करि मारे है।”

- (गाथा. ७३१/ पृ. २९७)

“सकल दुःखनिका मूल एक मिथ्यात्व है। सर्व संसारके दुःख एक मिथ्यादर्शनके प्रभाव करि होय हैं।”

- (गाथा. ७३३-३४ /पृ. २९८)

“तैसें मिथ्यात्वकरिकै कटुक जो जीव, ताविषै ग्रहण कीये जे तप ज्ञान चारित्र वीर्य ते नाशुकं प्राप्त होय हैं, अर जा जीवका मिथ्यात्व नष्ट हो गया ता जीवविषै तप ज्ञान चारित्र वीर्य सफल होय है” - (गा. ७३७-३८ /पृ. २९९)

- दर्शनमोह / मिथ्यात्वकी भयंकरता तथा सम्यक्त्वकी महिमा चारों अनुयोगोंमें वर्णित है। तत्त्वतः जीवकी प्रयोजन - सिद्धि भी इसीमें निहित है। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयका साङ्गोपांग विचार किया जाए। अतएव मोहनीयसे संबंधित तथा सम्यक्त्व संबंधित कुछ पहलुओं पर संक्षेपमें विवरण प्रस्तुत है :-

“सम्यग्दर्शनके अंतरंग हेतु दर्शन मोहके क्षय, उपशम व क्षयोपशम है।” - (नियमसार /मू./५३)

“मिथ्यात्व यह सम्यग्दर्शनका ठीक विरोधी भाव है।”

- (गोम्मटसार /जी /१८/१५)

“ज्ञानके मिथ्या होनेका अंतरंग कारण मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषायका उदय है।” - (गो. सा /जी./३०१/१६१)

मोहनीय कर्मके दो भेद हैं - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। जो समीचीन दर्शनके होनेमें बाधक भाव है वह दर्शनमोहनीय है, अर्थात् मिथ्यात्व समीचीन दर्शनका प्रतिपक्ष कर्म है। और जो समीचीन दर्शनके अनुकूल चारित्रके होनेमें बाधक भाव है, वह चारित्रमोहनीय है। प्रस्तुत विषयकी स्पष्टता हेतु प्रथम दर्शनमोहनीय विषयक तथा तदुपरांत चारित्र-मोहनीय विषयक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है -

“दर्शनमोहनीय बंधकी अपेक्षा एक होकर सत्कर्मकी अपेक्षा तीन प्रकारका है। इन तीनोंमेंसे जिसके उदयसे यह जीव सर्वज्ञ

प्रणीत मार्गसे विमुख, तत्त्वार्थोंके श्रद्धान करनेमें निरुत्सुक, हिताहितका विचार करनेमें असमर्थ ऐसा मिथ्यादृष्टि होता है, वह मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय है।।१।। वही मिथ्यात्व जब शुभपरिणामोंके कारण अपने स्वरस (विपाक) को रोक देता है और उदासीनरूपसे अवस्थित रहकर आत्माके श्रद्धानको नहीं रोकता तब सम्यक्त्व है। इसका वेदन करनेवाला पुरुष सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।।२।। वही मिथ्यात्व प्रक्षालन विशेषके कारण क्षीणाक्षीण मदशक्तिवाले कोदोंके समान अर्ध शुद्ध रसवाला होनेपर तदुभय कहा जाता है। इसीका दूसरा नाम सम्यग्मिथ्यात्व है। इसके उदयसे अर्ध शुद्ध मदशक्तिवाले कोदों और ओदनके उपयोगसे प्राप्त हुए मिश्र परिणामके समान उभयात्मक परिणाम होता है।।३।।”

- (सर्वार्थसिद्धि 1/19/1089/पृ. 292)

“**चारित्रमोहनीय** दो प्रकारका है - अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय। हास्य-रति आदि नौ कषाय अर्थात् अकषाय वेदनीय किंचित् कषाय होनेसे अकषाय कहा है। अनंतानुबंधी आदिके विकल्पसे कषाय वेदनीयके सोलह भेद हैं। यथा - क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषाय हैं। इनकी चार अवस्थायें हैं - अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन। अनंत संसारका कारण होनेसे मिथ्यादर्शन अनंत कहलाता है तथा जो कषाय उसके अनुबंधी हैं वे अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। जिनके उदयसे जिसका दूसरा नाम संयमासंयम है ऐसी देश विरतिको यह जीव स्वल्प भी करनेमें समर्थ नहीं होता है वे देश प्रत्याख्यानको आवृत करनेवाले अप्रत्याख्यानवरण क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। जिनके उदयसे संयम नामवाली परिपूर्ण विरतिको यह जीव करनेमें समर्थ नहीं होता है वे सकल प्रत्याख्यानको आवृत करनेवाले

प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। संयमके साथ अवस्थान होनेसे एक होकर जो ज्वलित होते हैं अर्थात् चमकते हैं या जिनके सद्भावमें संयम चमकता रहता है वे संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ हैं।”

- (सर्वार्थसिद्धि / ८/९/७४९-७५०/पृ. २९२-२९३)

“कषायोंका जो अभाव है, वही चारित्र है।”

- (परमात्म प्रकाश /पृ./४९)

“संयमगुणको घातें ते कषाय कहिए।”

- (स. चन्द्रिका /पृ. ६४)

उपर्युक्त आधारों परसे यह स्पष्ट हो जाता है कि चारित्रसे आत्माको च्युत करना चारित्रमोहका कार्य है, किन्तु इतर दृष्टिके समान शुद्धात्मानुभवसे च्युत करना चारित्रमोहका कार्य नहीं है। रागद्वेषका उत्पादक भी चारित्र मोह है। अर्थात् निश्चयसे जितना कषायोंका अभाव है उतना ही चारित्र है, और जो कषायोंका उदय है वही चारित्रसे च्युति है। अतएव सम्यग्दृष्टिके अनंतानुबंधी चतुष्कके उदयके अभावजन्य चारित्रका भेद स्वरूपाचरण चारित्र निश्चित ही प्रगट होता है। और उसके चारित्रमोहकी अन्य प्रकृतियोंके उदयसे होनेवाले चारित्र गुणमें विकार होनेपर भी उसके शुद्धात्मानुभवकी क्षति नहीं होती। (वि. देखें : पं. ध्या. /उ. /६९९)। इस प्रकारसे दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयके स्वभावकी कार्य-मर्यादा स्पष्ट है।

ध्यानार्थ उल्लेखनीय है कि, सर्व आगममें अनंत संसारका मूल कारण दर्शनमोह (मिथ्यात्व) को ही माना है। इसके सद्भावमें चारित्रमोह भी अपना एक स्थान रखता है। परंतु जिस जीवने अपने पराक्रमसे दर्शनमोह पर विजय प्राप्त कर ली तो अनंतानुबंधी

चतुष्क भी स्वतः पराजित हो ही जाता है, और शेष रहे चारित्रमोहकी कमर टूट जानेसे फिर उसमें ताकत नहीं रहती।

- इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सम्यक्त्वके विराधकभाव - मिथ्यात्वका कितना प्रभाव है, और यही सभी दोषोंमें सर्वोपरि है। और जो सर्वोपरि दोष (मिथ्यात्व) को निरस्त करके सम्यक्त्व रत्नको प्राप्त हुए हैं ऐसे सम्यग्दृष्टिकी विराधना भी प्रकारन्तरसे सम्यक्त्वकी ही विराधना है, जो दर्शनमोहको पुष्ट करती है।

वीतरागदृष्टि को असंयमी-अव्रतीकी संज्ञा !!

आगममे चारित्रके चार भेद बतलाये हैं। यथा: स्वरूपा-चरण चारित्र, देश चारित्र, सकल चारित्र और यथाख्यात चारित्र। स्वरूपाचरण चारित्र सामान्य है और यथाख्यात उसका विशेष है। और सामान्य कभी भी अपने विशेषको छोड़कर नहीं वर्तता, यह नियम है। स्वरूपाचरणके पूर्ण विकासका ही नाम यथाख्यात है। चौथे-गुणस्थानमें निश्चित रूपसे स्वरूपाचरण चारित्र तो रहता ही है।

चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टिको सर्व निवृत्तिरूप परिणाम, प्रतिज्ञा पूर्वक नियम या यावज्जीवन हिंसादि पापोंका एकदेश या सर्वदेश निवृत्ति जिसे - आगमभाषामें व्रत कहा गया है, ऐसा प्रकार नहीं होता है। इसी प्रकार उसको भोग व उपभोग्य वस्तुओंका जीवन पर्यंतके लिए त्याग जिसे - आगममें यम कहा है, भी नहीं होता है। अर्थात् सम्यक् रूपसे यम अर्थात् नियंत्रण या संयमनरूप जो संयम है, वह प्रकार नहीं रहता हैं।

तथापि, सम्यग्दृष्टिको शुद्धात्माकी उपलब्धिरूप संयम है; क्योंकि, वह सम्यक्त्वका अविनाभावी है। इसी भाँति उसको निश्चयकी अपेक्षासे विशुद्ध ज्ञानदर्शनरूप स्वभाव व्रत भी है; कारण कि उसने

आंशिक ही सही परंतु रागका सम्यक् परिहार तो किया ही है। तथापि उसका चारित्र व्रतादिरूप परिणत न होनेसे वह चारित्र बाह्यमें व्यक्त नहीं हो पाता है।

प्रकृत प्रकरणमें अब विचारणीय है कि ऐसा सम्यग्दृष्टि जिसने अपने पुरुषार्थसे स्वयंभूरमण समुद्रको बाहुबलसे तैर जानेसे भी अति दुस्तररूप अनंतसंसारपरिभ्रमणके मूल - दर्शनमोहको पराजित कर दिया है, फिर भी आगमभाषामें उसे 'अविरति,' 'असंयमी' कहा है - उसके पीछे क्या विवक्षा है ? - इसका सम्यक् आलोडन करना आवश्यक है। इसी संदर्भमें निम्न मन्तव्य ध्यानार्थ प्रस्तुत हैं :-

“असंयत सम्यग्दृष्टियोंके भी स्वानुरूप मनः साम्यकी अपेक्षा सम होता है क्योंकि इसके संयमका सर्वथा अभाव नहीं है।”

- (युक्तनुशासन /५९)

“सम्यक्त्व होय तो विषयोंमें विरक्त होय ही होय जो विरक्त न होय तौ संसार मोक्षका स्वरूप कहा जान्या।”

- (शी. पा. /४०)

अविरत गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टिके 'असंयम' विशेषणकी अपेक्षा द्रष्टव्य -

भावार्थ :- “संयम दो प्रकारका है, एक इन्द्रियसंयम और दूसरा प्राणसंयम। इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होनेको इन्द्रिय - संयम, और अपने तथा परके प्राणोंकी रक्षाको प्राणसंयम कहते हैं। इस गुणस्थानमें दोनों संयमोंमेंसे कोई भी संयम नहीं होता, अतएव इसको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। परंतु इस गुणस्थानके लक्षणमें जो 'अपि' शब्द पडा है। उससे सूचित होता है कि वह बिना प्रयोजन किसी हिंसामें प्रवृत्त भी नहीं होता। क्योंकि यहाँ असंयम भावसे प्रयोजन अप्रत्याख्यानावरणादि कषायके क्षयोपशमसे पाँचवें आदि

गुणस्थानोंमें पाये जानेवाले देशसंयम तथा आगेके संयमभावके निषेधसे है। अतएव असंयत कहनेका अर्थ यह नहीं है कि सम्यग्दृष्टिकी प्रवृत्ति मिथ्यादृष्टिके समान अथवा अनर्गल हुआ करती है। क्योंकि चतुर्थ गुणस्थानमें ४१ कर्म प्रकृतियोंके बंधका व्युच्छित्तिके नियमानुसार अभाव हो जाया करता है। अतएव ४१ कर्मोंके बंधकी कारणभूत प्रवृत्तियाँ उसके न तो होती ही है और न उनका होना संभव ही है। अतएव उसकी अंतरंग - बहिरंग प्रवृत्तियोंमें नीचेके तीन गुणस्थान वालोंकी अपेक्षा महान अंतर हो जाया करता है।”

(ध्यातव्य है कि बंध योग्य कुल प्रकृतियाँ १२० हैं, जिनमें मिथ्यादृष्टिको तीर्थकर, आहारक शरीर और आहारक आंगोपाङ्ग इन तीनका बंध नहीं होता)।

- (गो. सा. /जी./गा. २९/टी. /पृ. २२)

- इसी प्रकरणकी विशेष स्पष्टता हेतु (सर्वार्थसिद्धि १९/१/७८७) ध्यातव्य है :-

“असंयमके तीन भेद हैं - अनंतानुबंधीका उदय, अप्रत्याख्यानावरणका उदय और प्रत्याख्यानावरणका उदय। इसलिए इसके निमित्तसे जिस कर्मका आस्त्रव होता है उसका इसके अभावमें संवर जानना चाहिए। यथा: अनंतानुबंधी कषायके उदयसे होनेवाले असंयमकी मुख्यतासे आस्त्रवको प्राप्त होनेवाली निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यचायु, तिर्यचगति, मध्यके चार संस्थान, मध्यके चार संहनन, तिर्यचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इन पचीस प्रकृतियोंका अनंतानुबंधीके उदयसे होनेवाले असंयमके अभावमें इनका संवर होता है।” (अर्थात् चतुर्थ

गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टिको अनंतानुबंधीका उदय नहीं रहता तदर्थ असंयमकी मुख्यतावाली २५ कर्म प्रकृतियोंका भी उदय नहीं होनेसे तदनिमित्तक असंयम भावका भी सद्भाव नहीं रहता; यानी इन पच्चीस प्रकृतियोंका संवर होवे उतना संयम रहता है।)

ऊपरमें गोम्मटसारजीके उद्धरणमें वर्णित ४१ कर्म प्रकृतियाँ जो कि सम्यग्दृष्टिके बंधसे व्यच्छित्ति हो जाती हैं - इनमें सर्वोर्थसिद्धिमें वर्णित उक्त २५ कर्म प्रकृतियाँ असंयमसे संबंधित हैं; और शेष १६ कर्म प्रकृतियाँ मिथ्यादर्शनकी प्रधानतामें जिन प्रकृतियोंका आस्रव होता था उनका मिथ्यादर्शनके असद्भावमें व्युच्छित्ति जो हो जाती हैं - से संबंधित हैं। यथा -

मिथ्यादर्शनकी प्रधानतामें आस्रवको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियाँ - मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय - द्विन्द्रिय - त्रीन्द्रिय - चतुरिन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक और साधारण शरीर . = १६। - (स. सिद्धि /९/१/७८६)

उक्त संदर्भकी विशेष स्पष्टता करते हुए आचार्यदेव (उपासकाध्ययन/कल्प-२१ /श्लोक - २४५ में) फरमाते हैं कि, "...दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी कषाय जैसी प्रकृतियोंका उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय हो जाना मामूली बात नहीं है और उनके हो जानेसे जीवकी परिणतिमें आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है, उसीके कारण उसके प्रतिसमय असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा होती है, अनेक प्रकृतियोंका बंध रुक जाता है और अनेकोंके स्थिति अनुभागका ह्रास या क्षय हो जाता है।"

- इस तरहसे चतुर्थ गुणस्थानवर्तीको अविरति - असंयमी कहनेके पीछे क्या अपेक्षा है, तथा वह सर्वथा अत्रती - असंयमी

नहीं है, इसकी स्पष्टता हो जाती है; फिर भी विषय - मंथन हेतु विवेचनीय है कि, शल्य के तीन भेद हैं। मायाशल्य - निदानशल्य और मिथ्यादर्शनशल्य - इनके रहते किसीको सम्यग्दर्शन होना संभव ही नहीं है। और आगममें 'निश्शल्यो व्रती' कहा है। वस्तुतः - ऐसा प्रकार तो सम्यग्दृष्टिको निस्संदेह सहज होता है; परंतु ऊपर बतलाये प्रतिज्ञापूर्वकके नियमरूप बाह्य व्रत उसे नहीं होते। वैसे ही स्वानुरूप मनः साम्यकी अपेक्षा सम होता है, और साथ ही अनंतानुबंधीके उदयसे असंयमकी मुख्यतासे आस्त्रवको प्राप्त होनेवाली कर्मप्रकृतियोंका संवर होनेरूप संयम भी उसे होता है; परंतु ऊपर (आगे) के गुणस्थानके लायक संयम-भाव नहीं होता।

तत्त्वतः संयमी व असंयमी कौन ?

“जबतक यह आत्मा प्रकृतिके निमित्तसे उपजना विनशना नहीं छोड़ता, तब तक वह अज्ञायक है, मिथ्यादृष्टि है, असंयम है।”
- (स. सार /मू. /३१४)

“सम्यक्त्वके अभावमें सरागसंयम और संयमासंयम नहीं होते।”
- (स. सि. /६/२०/६५० /२५२)

“सम्यक्त्व शून्य होनेके कारण व्रत, समिति आदि पालता हुआ भी वह संयत नहीं, मिथ्यादृष्टि ही है।”
- (वि. देखें : प्र. सा. /ता, वृ./२३६)

“भावसंयमसे रहित द्रव्य संयम नहीं है।”

- (वि. देखें. : धवला. १/१, १, ४/१४४)

“जिस समय जीव शांत भाव धारण करता है उसी समय संयमी होता है, तथा क्रोधादिके वश होता है तब वह असंयमी है।”
- (प प्र. /उ./४१)

“निष्किय आत्माके स्व शुद्धात्माकी उपलब्धि ही संयम कहलाता

है।”

- (पं. ध्या. /उ./१११७)

“जो अंतरंग और बहिरंग आस्रवोंसे विरत हैं, उन्हें संयत कहते हैं।”

- (ध. १/१,१, १२३/३६९/१)

- इस प्रकारसे मात्र बहिरंग संयम वस्तुतः अंतरंग संयमके अभावमें मात्र संयमाभास ही है, संयम नहीं। इसीसे अकेले बाह्य संयमका मोक्षमार्गमें कोई महत्त्व या स्थान नहीं है। अपितु ऐसी समस्त क्रियामें फिर वे चाहे व्यवहार श्रद्धानसे संबंधित हो, या परलक्ष्यी शास्त्रज्ञानकी हों, या बाह्य व्रत-संयम-तपश्चरणादि आचरण संबंधित हों - सभी संसारको साधती हैं, किन्तु मोक्षकी साधक नहीं होती हैं। इसी संदर्भमें आचार्य भगवानने पंचास्तिकाय /गाथा / १७२ की टीकामें कहा है कि “जो केवल व्यवहारालंबी हैं ... सांगोपांग पंचाचारका पालन करते हुए भी.... अत्यंत दीर्घकाल तक संसारसागरमें भ्रमण करते हैं।”

प्रत्यक्ष सत्-योगका महत्त्व

“प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार;
ऐवो लक्ष थया विना, उगे न आत्म विचार।”

- (आत्मसिद्धि /११)

जिनशासनमें अनादि महामंत्रमें सिद्धपद ऊँचा होनेपर भी प्रथम अर्हतपदको नमस्कार किया गया है, इसके पीछे प्रत्यक्ष योगका मर्म सूचित होता है।

धर्म प्राप्ति हेतु देशनारूप बोधबीजके निमित्त तीर्थकरादि, भावलिंगी मुनि व ज्ञानी सत्पुरुष ही होते हैं। अन्य किसीमें भी यह निमित्तत्व होता ही नहीं है।

अनंत कालसे परिभ्रमण करते हुए जीवको दुर्लभमें दुर्लभ ऐसा तीर्थकरादिका प्रत्यक्षयोग यत्किंचित् होनेपर भी अनंतबार प्राप्त हुआ

है। यद्यपि समवसरणादि बाह्य वैभवके कारण वे स्वयं प्रसिद्ध ही होते हैं; तथापि जीवने ऐसा परम योग प्राप्त करके भी अपनी लोकदृष्टि, ओघसंज्ञा, विषयानुरागकी मुख्यतावश या यथार्थ भावनाके अभावसे या फिर तत्त्वनिर्णयके लिए समुचित पुरुषार्थके अभाववश या न्यूनताके कारणसे यथार्थ पात्रतामें नहीं आनेसे यह दुर्लभ योग निष्फल होता रहा है। और अन्य ज्ञानी धर्मात्माओंकी सम्यक् पहचान करनी तो अति दुर्गम और दुष्करतर ही रहती है; यद्यपि इनका योग भी क्वचित् मिला, परंतु यह योग भी अयोगरूप होता आया है।

उल्लेखनीय है कि, प्रथम धर्मबोधके निमित्त अपने इस क्षेत्रमें वर्तमानमें कोई तीर्थकरादि विद्यमान नहीं हैं; और न ही कोई भावलिंगी महात्मा दृष्टिगोचर हैं - ऐसे संतोंका निर्ग्रथलिंग साक्षात् जिनेन्द्रका प्रतिबिंब होता है। उनकी बाह्यभ्यंतर उपशम दशा ही ऐसी होती है कि जो वचन बोले बिना ही मात्र अपने शरीरकी आकृतिसे मानों मूर्तिमान मोक्ष-मार्गका निरूपण कर रही हो; परंतु वर्तमानमें ऐसे महात्माओंके दर्शन ही दुर्लभ है। शताब्दियों पूर्व भी ऐसे मुनिराजोंकी दुर्लभता रही है*; फिर अभी तो उत्तरोत्तर हीन काल है, उसमें इनके दर्शन कहाँसे सुलभ हो ? इस कालमें सत्पुरुषोंका योग भी अत्यन्त कठिन है और अभी इनकी विद्यमानता भी अति अल्प है*।

तत्त्वतः देवप्रतिमा, शतशास्त्र, पूर्व ज्ञानियोंके वचन जो कहीं साहित्य - टेप-वीडियो आदिमें यदि उपलब्ध हों तो भी ये कोई प्रत्यक्षयोगके स्थानापन्नके अयोग्य ही हैं; क्योंकि इनमें प्रथम देशनाका

१. वि. दे. पद्मनन्दि पंचविशतिका/मू./३६; ज्ञानार्णव/५/२/८०; ५/२९/८४.

२. वि. दे. कार्तिकेयाप्रेक्षा/मू./टी./२७९

निमित्तत्व ही नहीं रहता है। और ध्यातव्य है कि धारणा ज्ञानधारी अज्ञानियों व जिनलिंगाभासोंसे देशना प्राप्तिका तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

“बिना नयन पावे नहीं, बिना नयनकी बात;
सेवे सद्गुरुके चरन, सो पावे साक्षात्।”

- (श्रीमद्जी)

अतएव वर्तमानकी ऐसी विषम परिस्थितिमें धर्मबोधरूप प्रयोजनसिद्धिका एक मात्र निमित्त कोई विद्यमान सत्पुरुष ही शेष रहता है। अमृतसे भरा सरोवर हो या कलशमें अमृत भरा हुआ हो या मात्र कटोरी जितना ही अमृत क्यों न हो - सभी पात्रोंमें रहा अमृत ही है, जो कि निर्विषीकरण हेतु एक जैसी क्षमता रखता है; पात्रोंके भेदसे उसकी इस गुणवत्तामें कोई अंतर नहीं पड़ता है। इसी तरह संसारके विषको दूर करनेकी देशनारूप क्षमताके दृष्टिसे तीर्थकरादिके ही सद्दृश्य सत्पुरुष होते हैं। जैसे कि, दूरस्थ क्षीरसागर, जीवकी पहुँचके बाहर होनेपर प्रत्यक्ष उपलब्ध जलका कलश भी उसकी प्यास बुझानेमें सक्षम है।

परंतु धर्मके इस उत्तरोत्तर अकालरूप दुष्म कलिकालमें सत्पुरुषका योग मिलना भी अत्यन्त दुर्लभ है। यदि पूर्व पुण्योदयसे यह योग प्राप्त हो भी जाए तो उनको पहचानना तो और भी दुष्कर है। पहचान होनेपर उनके प्रति मुमुक्षुजीवके कैसे भाव रहते हैं? - इस संदर्भमें आत्मज्ञ सत्पुरुष श्रीमद्जीके उद्गार मंथन योग्य हैं -

“अनंत कालसे स्वयंको स्वविषयक भ्रांति रह गयी है; यह एक अवाच्य और अद्भुत विचारका विषय है। जिसमें मतिकी गति नहीं, उसमें वचनकी गति कहाँसे हो ?

निरंतर उदासीनताके क्रमका सेवन करना; सत्पुरुषकी भक्तिमें

लीन होना; सत्पुरुषोंके चरित्रोंका स्मरण करना; सत्पुरुषोंके लक्षणका चिंतन करना; सत्पुरुषोंकी मुखाकृतिका हृदयसे अवलोकन करना; उनके मन, वचन और कायकी प्रत्येक चेष्टाके अद्भुत रहस्योंका वारंवार निदिध्यासन करना और उनका मान्य किया हुआ सभी मान्य करना।

यह ज्ञानियोंके द्वारा हृदयमें स्थापित, निर्वाणके लिए मान्य रखने योग्य, श्रद्धा करने योग्य, वारंवार चिंतन करने योग्य, प्रतिक्षण और प्रतिसमय उसमें लीन होने योग्य परम रहस्य है। और यही सर्व शास्त्रोंका, सर्व संतोंके हृदयका और ईश्वरके घरका मर्म पानेका महामार्ग है। और इन सबका कारण किसी विद्यमान सत्पुरुषकी प्राप्ति और उसके प्रति अविचल श्रद्धा है।

अधिक क्या लिखना ? आज, चाहे तो कल, चाहे तो लाख वर्षमें और चाहे तो उससे देरमें या जल्दी, यही सूझनेपर, यही प्राप्त होनेपर छुटकारा है। सर्व प्रदेशोंमें मुझे तो यही मान्य है।

... सर्वकाल यही कहने के लिए जीनेका इच्छुक...।”

- (प. / १७२)

“ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीके पाससे होनी चाहिए। यह स्वाभाविकरूपसे समझमें आता है, फिर भी जीव लोकलज्जा आदि कारणोंसे अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ता, यही अनंतानुबंधी कषायका मूल है।”

“ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सके कि जो एक निष्ठासे, तन, मन और धनकी आसक्तिका त्याग करके भक्तिमें जुट जाय “

“अनंतकाल तक जीव स्वच्छंदसे चलकर परिश्रम करे तो भी अपने आप ज्ञान प्राप्त न करे; परंतु ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक

अनंतमुहूर्तमें भी केवलज्ञान प्राप्त करे।”

“शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष हैं और वे जीवके अधिकारी होनेके लिए कही हैं; मोक्ष प्राप्तिके लिए ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिए।”

“इस गुप्त तत्त्वका जो आराधन करता है, वह प्रत्यक्ष अमृत प्राप्त करके अभय हो जाता।”

- (पत्रांक : २००/वचनावली - ३,६,११,१२,१४)

यद्यपि अनादिसे परिभ्रमण करके हुए जीवको क्वचित् ही ज्ञानीपुरुषका प्रत्यक्षयोग मिलता है, फिर भी अनंतकालमें ऐसा दुर्लभ योग जीवको अनंतबार प्राप्त हो चुका है; तथापि जीवने एक बार भी ज्ञानीपुरुषकी यथार्थ पहचान नहीं की; इसीसे अनादि क्लेश संततिसे इस जीवकी निवृत्ति नहीं हो पायी। यह तो ध्रुव नियम है कि यदि जीव ओघ-संज्ञादि दोषोंको छोड़कर ज्ञानीपुरुषकी सम्यक् पहचान / प्रतीति सहित उनकी आज्ञाका एक निष्ठासे आराधन कर लेवे तो वह जीव स्वयं ज्ञानी हो सकता है; और उसका संसार-परिभ्रमणका अंत सुनिश्चित हो जाता है। अतएव सत्पुरुषकी पहचानका असाधारण महत्त्व स्पष्ट है।

उल्लिखित 'पहचान विषयक भूल' इस जीवकी अनादि कालसे चली आ रही है। जीवको सद्भाग्यसे कदाचित् प्रत्यक्ष सत्पुरुषका योग भी मिला, परंतु उनका बाह्य दिखाव अविरतिकासा होनेसे उसने उनका समागम और उपदेश श्रवणादि एक 'सामान्य विद्वान' होनेके पूर्वाग्रह पूर्वक ही किया; और यही जीवका सबसे बड़ा दोष रहा है। इसी कारणसे जीवको प्रत्यक्ष सत्पुरुष और उनके वचनोंके प्रति प्रीति और महिमा समुत्पन्न नहीं हो सकी। फलस्वरूप ऐसा दुर्लभ योग भी अयोगके बराबर होता रहा है।

अधिकांश जीवोंको अपने-से सत्पुरुषकी पहचान करना प्रायः दुष्कर ही है; अतएव यदि कोई प्रसिद्ध सत्पुरुष, जीवोंकी ऐसी योग्यता को लक्ष्यगत करके, उनपर परम अनुग्रह करके उन्हें अन्य अप्रगट सत्पुरुषका परिचय करा दें तो तथोक्त प्रकारकी 'पूर्वाग्रह-युक्तवाली भूल' होनेकी संभावना कम हो जाती है। और धर्म-बोधके अभिलाषी जीवको उनके समागम और उपदेशादि श्रवणके वक्त - "यह मेरा 'साक्षात् सजीवन ज्ञानमूर्तिसे' प्रत्यक्ष बोधका अवसर है" - ऐसा सत्-प्राप्तिका अहोभाव, दर्शनमोहके रसको मंद कर, अपूर्व आस्था युक्त महिमा और प्रीति सहित, बोध-ग्रहण करनेकी क्षमतारूपभाव उत्पन्न होनेसे स्वरूपबोध प्राप्त होता है; या पुरुषार्थ मंद रहनेकी दशामें संस्कार - बीजारोपण तो होते ही हैं जो अल्प समय - अंतराल पर निश्चय ही फलीभूत हो जाते हैं, और उसके संसार - परिभ्रमणका अन्त सन्निकट हो जाता है; क्योंकि प्रत्यक्ष सत्पुरुष - योग तो धर्मबीज अंकुरित होनेका अनन्य साधन है।

- इसी मर्मको लक्ष्यगत कर उपर्युक्त प्रकारके दोषके निवारणार्थ निष्कारण कारुण्यवृत्तिसे अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेवश्री कहानजी स्वामीने वर्तमान जीवों पर एक और अनुकम्पा करके परम उपकार स्वरूप विद्यमान प्रगट धर्मात्मा सत्पुरुष पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी निर्मल अंतर परिणतिका परिचय कराया है, जो वर्तमानके गहनतम अंधकारमें प्रकाशकी एक किरण है। आपसे जीवोंको धर्मकी बोधरूप देशना तथा धर्ममार्गकी प्राप्ति सुलभ हो सकती है।

धर्मीको लक्ष्य करनेका एक मात्र प्रयोजन उनमें प्रस्फुटित हुआ धर्म अपनेमें प्रगट करना है। ऐसा सत्योग, प्रयोजनको सर्वोपरी बनाकर, दर्शनमोहके रसको मंद कर वृत्तिको अन्तर्मुख करनेमें अनन्य कारण बनता है। प्रत्यक्षता तद्विषयक रसको समुत्पन्न, स्फुरित

व गतिमान करती है - यह तो परिणामविज्ञानका सनातन धर्म है। यद्यपि, इस सिद्धान्तसे प्रत्यक्ष सत्ययोगका यथार्थ व अवर्णनीय मूल्यांकन तो धर्मरूप परिणत होनेपर ही अनुभूत हो पाता है; तथापि आत्मार्थी मुमुक्षु - भूमिकामें भी निजहितरूप प्रयोजनसिद्धि हेतु सत्पुरुषकी प्रत्यक्षताका अमूल्य महत्त्व तो सहज ही भासित होता है।

उक्त कथनमें 'निमित्ताधीन दृष्टि' देखना अयोग्य व भ्रांतिमय है। क्योंकि प्रत्येक ज्ञानीका एकमात्र निरपवाद अभिप्राय 'निजपरमतत्त्वकी ही त्रिकाल उपादेयता' है; अतः आत्मार्थी मुमुक्षुको ऐसे अनुपम बोध ग्रहणके समय समक्ष विद्यमान बोधिदातारके प्रति सहज परंतु अनिवार्यरूपसे भक्ति व अहोभाव उमडता है; और तभी उसकी परिणति, दर्शनमोहरस मंद होनेसे यथार्थरूपसे अंतर्दिशामें स्फुरित होती है। -ऐसे आत्मलक्षी मुमुक्षुको यह सदा अति स्पष्ट भान रहता है कि लक्ष्यप्राप्ति उसीके उपादान व स्वतंत्र पुरुषार्थसे ही होगी, अन्य किसी आश्रयसे नहीं। प्रत्यक्ष सत्पुरुषके प्रतिका भक्ति व समर्पणभाव तो सत् निमित्तका ही विवेक व महिमा है, जिसके बिना आत्माका विवेक व महिमा तो असम्भव है।

ज्ञातव्य है कि अपर्णता, अहोभाव व भक्ति-भावना ज्ञान-पटल पर सत्-तत्त्वके अपूर्व मूल्यांकनका* ही रूप है; ऐसे परिणामोंमें

* निर्जन बयाबान गहन बीहडमें मार्गसे भटका हताश व निस्पृहाय दिग्भ्रमित हुआ पथिक जब घटाटोप अंधेरी रातमें अपने सन्निकट आती खूंखार जानवरोंकी हृदयविदारक क्रूर दहाडों और चारों ओर मौत बरसाती चिनगारियोंकी-सी चमक रही इन यमदूतोंकी घूरती आँखोंको देखकर-थरथरता, प्राणभयसे भयविल्लल हुआ, आसन्न मृत्युको पल पल प्रत्यक्ष निकट आता देख, जिसकी जीवन-आशा बिल्कुल निरस्त हो चुकी हो... ऐसी भीषण स्थितिमें वह कोई निष्काम व्यक्ति द्वारा दीपशिखासे प्रदर्शित निरापद स्थल पर पहुँच विकट प्राणसंकटसे उबर जाए... तो उस प्राणदाता

केवल राग ही देखना यथार्थतासे विमुख होना है। यद्यपि, पूर्णता प्राप्ति तक रागांश तो रहता ही है; परंतु दृष्टि तो अभिप्राय व प्रयोजनकी मुख्यता पर ही रहना इष्ट है।

बोध-प्राप्ति हेतु सत्पुरुषका योग व समागम कितना मूल्यवान है, इस विषयमें असाधारण प्रतिभावान धर्मात्मा श्रीमद्जीका निम्न उद्धृत हार्द सामान्य जीवको एक बारभी स्तंभित कर सूक्ष्म व गंभीर विचार करनेको विवश करता है -

“स्वच्छंदता दूर नहीं हुई, और सत्समागमका योग प्राप्त हुआ है, उस योगमें भी स्वच्छंदताके निर्वाहके लिए शास्त्रके किसी एक वचनको बहुवचन जैसा बताकर, मुख्य साधन जो सत्समागम है, उसके समान शास्त्रको कहता है अथवा उससे विशेष भार शास्त्र पर देता है; उस जीवको भी ‘अप्रशस्त शास्त्रीय अभिनिवेश’ है।” - (पत्रांक : ६६९)

अतः मुमुक्षु अपनेको धर्म-पिपासाकी तीव्र भावनासे ओतप्रोत करके विद्यमान सत्पुरुषके चरणोंमें सर्वार्पणता करे, ताकि हृदयमें आर्द्रताका उद्भव हो सके व शुष्कताके अभावसे दर्शनमोहका रस मंद होकर देशनारूप धर्मबीजके योग्य पात्रता / भूमि तैयार हो सके। अपनेको पूरी शक्ति ऐसी भूमि तैयार करनेमें लगानी चाहिए; ताकि महान-महान सद्भाग्यसे प्राप्त इस प्रत्यक्ष योगका यथेष्ट लाभ मिल सके।

निमित्तके प्रति उसको कितनी और कैसी महिमा उमड़ेगी !! यह अनुभव योग्य है। यद्यपि, यह जीवनदान मात्र वर्तमान प्रसंग तक ही सीमित है। तो ... जिनके पथ-प्रकाशनसे अनादिसे अनंत दुःखोंको भोग रहे जीवको अनंत जन्म-मरणकी अकथनीय क्लेश संततिसे छूटने और अक्षय सुखकी प्राप्तिका मार्ग मिल जाए तो ऐसे परम उपकारीके उपकार-प्रतिके मूल्यांकनवश उस जीवको कितना विनय-बहुमानादि स्फुरित होगा, जो स्वतः मूल्यांकन करने योग्य है।

अंतमें, ध्यातव्य है कि यद्यपि प्रस्तुत पुस्तिकामें विवक्षित संदर्भमें आत्महितरूप प्रयोजनसिद्धिके अन्वेषणार्थ कई आगमाधार उद्धृत किये हैं; परंतु उल्लेखनीय है कि बारहअंगोंका साररूप शुद्धात्मानुभूति जिनको प्राप्त है - ऐसे सत्पुरुषके पास ही सर्व आगम-रहस्य हैं; और वही जीवंत जिन शासन है - ('पस्सपदि जिणसासणं सव्वं' - समयसार / गा १५) और 'वही धर्मकी मूर्ति है'

- (कार्तिकेयानुप्रेक्षा / पृ. २३५)।

“शास्त्रमें मार्ग कहा है, मर्म नहीं कहा। मर्म तो सत्पुरुषके अंतरात्तामें रहा है।” - (श्रीमद् राजचंद्र / प ५८)



अहो सत्पुरुषके वचनमृत, मुद्रा और सत्समागम !
 सुषुप्त चेतनाको जागृत करनेवाले,
 गिरती वृत्तिको स्थिर रखनेवाले,
 दर्शनमात्रसे भी निर्दोष अपूर्व स्वभावके प्रेरक,
 स्वरूप प्रतीति,
 अप्रमत्त संयम और पूर्ण वीतराग
 निर्विकल्प स्वभावके कारणभूत;
 - अंतमें अयोगी स्वभाव प्रगट करके
 अनंत अव्याबाध स्वरूपमें स्थिति करानेवाले !
 त्रिकाल जयवंत रहें !
 जयवंत रहें ! - (श्रीमद् राजचंद्र / प. ८७५)



परिशिष्ट : संदर्भ ग्रंथ - निर्देश

- अनगारधर्माभृत - पृष्ठ : ६.
 अमितगति श्रावकाचार - पृष्ठ : १९.
 आत्मसिद्धि (श्रीमद् राजचंद्रजी) - पृष्ठ : ४५.
 उपासकाध्ययन - पृष्ठ : ३, ७, २२, ४३.
 कषायपाहुड - पृष्ठ : १२.
 कार्तिकेयानुप्रेक्षा - पृष्ठ : ४,५, १७,२३,२९,३४,३५, ४७, ५४.
 गोम्मटसार (जीवकाण्ड) - पृष्ठ : ५,२३,२४,३६,३६, ४१-४२.
 गोम्मटसार (जीवकाण्ड/सम्यग्ज्ञान चंद्रिका) - पृष्ठ : २५, ३८.
 ज्ञानार्णव - पृष्ठ : ४, ६, ८, १९, २१, २४, ४६.
 चारित पाहुड - पृष्ठ : १५.
 छहढाला (पं. दौलतरामजी) - पृष्ठ : ३०.
 जैनेन्द्र सिद्धांत कोश - पृष्ठ : ३, ३, १७, २१.
 तत्त्वानुशासन - पृष्ठ : १२, १२.
 दर्शन पाहुड - पृष्ठ : २, ६, २३-२४, २९, २९, ३२, ३३.
 द्रव्यसंग्रह (टीका) - पृष्ठ : ५, ६, ८, १३, २२, २४.
 द्वादशानुप्रेक्षा - पृष्ठ : २, ६.
 धवला - पृष्ठ : २, ९, १५, २१, २४, ४४, ४५.
 नियमसार (मूल) - पृष्ठ : ३६.
 नियमसार (टीका : मुनि पद्मप्रभमल्लधारीदेव) - पृष्ठ : २०, २८.
 पंचाध्यायी (पूर्वार्ध) - पृष्ठ : ११-१२, १५.
 पंचाध्यायी (उत्तरार्ध) - पृष्ठ : ६, १०, ११, ११, १२, १६, १७,
 १७, २०, २०, २३, ३९, ४५.
 पंचास्तिकाय (तात्पर्य वृत्ति) - पृष्ठ : ७, ९, ११, २१.
 पंचास्तिकाय संग्रह (समयव्याख्या टीका) - पृष्ठ : ४५.
 पद्मानन्दि पंचविंशतिका - पृष्ठ : ४, १९, २२, २९, २९, ४६.
 परमात्मप्रकाश - पृष्ठ : १५, २३, ३८, ४४.
 पुरुषार्थसिद्धिउपाय - पृष्ठ : ५.

- प्रवचनसार (तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति) - पृष्ठ : २०, २१, ३४.
- प्रवचनसार (तात्पर्य वृत्ति) - पृष्ठ : २,२,१२,२०,२४,२४, ३२, ४४.
- बारस अणुवेक्खा - पृष्ठ : ३.
- ब्रह्मविलास (भैया भगवतीदास) - पृष्ठ : ३०.
- भगवती आराधना - पृष्ठ : ६, १९, २१, ३१, ३६, ३६,३६.
- भाव पाहुड - पृष्ठ : ५, ६, १८.
- महापुराण - पृष्ठ : ३१, ३१.
- मूलाराधना - पृष्ठ : २२.
- मोक्षमार्ग प्रकाशक - पृष्ठ : ९.
- युक्त्यनुशासन - पृष्ठ : ४०-४१.
- योगसार (अमितगति) - पृष्ठ : २४.
- योगसार (योगेन्दुदेव) - पृष्ठ : १९.
- रत्नकरण्ड श्रावकाचार - पृष्ठ : २, २, ६, १९, २२.
- रयणसार - पृष्ठ : ३, ४, ४, ११.
- राजवार्तिक - पृष्ठ : २०.
- वसुनन्दि श्रावकाचार - पृष्ठ : ५.
- श्रीमद् राजचंद्र - पृष्ठ : २६, २७, ४७, ४८-४९,५३,५४,५४.
- शील पाहुड - पृष्ठ : ४१.
- षट्खण्डागम-प्र.-जी.-धवला टीका समन्वित - पृष्ठ : २५,३३,३४-
३५.
- समयसार (मूल) - पृष्ठ : ११, १९, २०-२१, ४४, ५४.
- समयसार (आत्मख्याति) - पृष्ठ : १२, १३, १३, १३, १७, १७,
१९, २०-२१, २२.
- समयसार कलश टीका - पृष्ठ : २३, २३, २८-२९.
- समयसार (तात्पर्य वृत्ति) - पृष्ठ : ७, ८.
- समयसार नाटक - पृष्ठ : २९.
- समाधितंत्र - पृष्ठ : २२, २३, ३२.
- सर्वार्थसिद्धि - पृष्ठ : २, ४, ५, १०, ३७,३८, ४२, ४३, ४४.
- स्याद्वादमंजरी - पृष्ठ : २०, २०.

शास्त्र अध्ययनकी सम्यक् पद्धति

उपलब्ध जिनागममें दो प्रकारके विषय समाहित हैं - एक प्रकार केवलीगम्य विषयोंका है जो मात्र जानने हेतु ही प्रयोजनीय है; तथा दूसरा प्रकार जीवोंके स्वहित-अहितसे संबंधित है, जो प्रयोजनभूत है। सर्व ज्ञानियोंका प्रयोजनभूत विषयमें सर्वदा एक ही मत होता है। क्योंकि आत्मद्रव्यका स्वभाव सभी जीवोंका एक जैसा ही है और उसके अवलम्बनसे हुआ अनुभव / ज्ञान भी एक ही प्रकारका होता है, तथा उसकी प्राप्तिका मार्ग भी एक ही होता है। इसलिए मोक्षमार्ग और उसे प्राप्त करनेकी विधि भी तीनोंकालोंमें सर्वत्र एक ही है। इसीसे त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञानियोंका मत / अभिप्राय सदा एक ही रहा है।

सिद्धांत वस्तुस्वरूपके प्रदर्शक होनेसे, सर्वकाल अपरिवर्तनीय होते हैं। और ज्ञानियोंकी सनातन यही भावना रही है कि "सर्व जीव संसारके क्लेशोंसे सर्वथा मुक्त हों और अनंत काल अपने अनंत अव्याबाध समाधि सुखको भोगनेमें निमग्न रहें।" - इसी परम निस्पृह कारुण्यवृत्तिसे ज्ञानियोंने देश-कालादि और संगमें आए तत्कालीन जीवोंकी योग्यताका खयालकर सिद्धांतके मर्मको समझाने या विषयको और स्पष्टकरने हेतु सरलशैलीमें विवेचन किया है।

जैसे एक प्रमाणिक दवा निर्माता फर्म कई प्रकारकी दवाओंका निर्माण करती है; उसकी निर्मित सभी दवायें अत्यंत प्रभावी भी हैं; परंतु वे सभी एक रोगकी दवा नहीं रहती; इनमेंसे रोगीको अपने रोगकी दवा ही सेवनीय होती है। इसीप्रकार सर्व संसारी जीवोंको भव-रोग तो 'सामान्य' है, परंतु उसके प्रकार असंख्य

हैं, अर्थात् विपरीततायें और अटकनेके स्थान असंख्य होते हैं; इन असंख्य प्रकारके रोगोंसे परिमुक्ति हेतु आगममें अनेक प्रकारसे बोधकथन उपलब्ध हैं। परंतु वे सभी कथन चाहे जिस शैलीमें, चाहे जिन वचनोंमें रहे हों इन सभीका लक्ष्य / तात्पर्य जीवको वीतरागता प्रकट करनेके लिए ही हैं; कहीं छल पकड़ने, स्वच्छंद करने या कहीं अटकजाने हेतु कभी नहीं होता है।

यद्यपि, सर्व ज्ञानियोंके एक-एक वचन अनंतनयोंकी संधि पूर्वक और आगमके अनंत रहस्य गर्भित होते हैं, ज्ञानियोंके ज्ञानमें १२ अंगोंका सार स्पष्ट रहता है; लेकिन वचनरूप प्रवृत्ति क्रमिक होनेसे सर्वांग विषय एक ही वचनमें युगपत् आना संभव नहीं होता है। और कहीं, विवक्षित विषयकी मुख्यतासे अन्यको गौण करना होता है। हर एक ज्ञानीकी कथनशैली / निरूपण पद्धतिमें अपनी विशिष्टता होनेसे भिन्नता नजर आना संभवित है। फिर भी ज्ञानियोंकी चाहे जो कथनशैली रही हो, चाहे जो प्रतिपादित विषयकी मुख्यतामें अन्य विवक्षा गौण रही हो या चाहे जिन शब्दोंका वचन व्यवहार रहा हो - इन सभीका उद्देश्य सिद्धांतको स्थापित करना ही रहा है। आगममें वर्तमानमें जो विविधता दृष्टिगोचर होती है - वह मात्र कथनशैलीका वैषम्य है; और वह भी मात्र जीवके कल्याण हेतु और मात्र वीतरागताकी ही पृष्टि हेतु एवं वीतरागता प्रकट करानेके उद्देश्यसे ही है।

पूर्वाग्रह और किसी धारणावश या अपने दृष्टिरागवश या अपने सुहाते विषयकी मुख्यतावश या अपने अभिप्रायके पिष्टपेषणार्थ या उसके समर्थन हेतु किसी ज्ञानीके किसी एक वचनकी आड़ लेकर या वैसे किसी मिलते वचनकी खींचतान करके अपने मान पोषणार्थ उसका अर्थ घटन करने की या विपरीत अभिनिवेश (आत्मार्थके

सिवाय जिस जिस प्रकारसे जीवने शास्त्रकी मान्यता करके कृतार्थता मानी हैं, वह सब शास्त्रीय अभिनिवेश है।" - (श्रीमद् राजचंद्र /५-६६९)) पूर्वक की गयी प्रवृत्तिसे किसी भी प्रकारसे कोई भी ज्ञानीके किसी भी वचनकी विराधनारूप भयंकर अपराध होनेके प्रति अत्यंत सावधानी होनी चाहिए; क्योंकि इसके समान जगतमें अन्य कोई महा दोष नहीं है, इस कृत्यसे सीधा दर्शनमोह तीव्र हो जाता है; अतएव इस विषयमें समुचित जागृति और विवेक रखना आत्महितार्थ अति आवश्यक है।

अतएव किसी भी जिन वचनरूप ज्ञानीके वचनका अर्थ घटन हेतु मतार्थ, नयार्थ, आगमार्थ, शब्दार्थ आदि दृष्टियोंसे तथा कथन मर्यादा, विवक्षा, कथनपद्धति, प्रकरण और सर्वांग अपेक्षाओं आदिको समझकर उस परसे तात्पर्यार्थका सम्यक् अवगाहन करके वीतरागता - प्राप्तिरूप प्रयोजनसिद्ध करना ही एकमात्र आत्मार्थी जीवका परम कर्तव्य है। सर्व ज्ञानियोंके सभी वचनोंमें अविरोध, अवैषम्यता, परस्पर संधि - मेल - समन्यवय करना ही शास्त्राभ्यासी जीवका आवश्यक और पुनीत कर्तव्य है। और यही सम्यक् अध्ययन पद्धति है।

कहीं पर आचार्य भगवानने "परदब्बादो दुग्गई" कहा है तो अन्यत्र ऐसा भी कहा है कि "हे प्रभु ! आप ही हमारे शरण हैं, सर्वस्व हैं, तारणहार हैं आदि।" कहीं रागादि परिणाम निश्चयसे जीवके हैं तो कहीं उन्हें जड़के परिणाम या जड़ कहा है। कहीं पुण्यभावको विषकुम्भ कहा है तो कहीं उसे धर्म भी कहा गया है। कहीं सम्यग्दृष्टिको मुक्त कहा है, तो कहीं सिद्ध जीवोंके सिवा सभीको संसारी कहा है। इत्यादिक। - उक्त वचनोंमें परस्पर विरोध-सा दिखता है, परंतु कहीं भी तत्त्वतः विरोध नहीं है। फिर

भी जिन्हें विरोध लगता है या जो किसी एक की मुख्यतामें दूसरेको गलत बताते हैं तो ऐसी प्रवृत्ति मात्र उनकी अल्प बुद्धिका ही द्योतक है। अतएव इस संबंधमें उपयोगकी जागृति रखकर सर्व जिनवचनोंके प्रति सर्वार्पणता रखकर सर्वत्र यथार्थता और वीतरागता ग्रहण करना ही उचित है।



श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

| ग्रंथ का नाम एवं विवरण | मूल्य |
|--|--------|
| ०१ जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन) | ०८-०० |
| ०२ द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग - पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्त्वचर्चा) | ३०-०० |
| ०३ दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन) | ०६-०० |
| ०४ दंसणमूलो धम्मो (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार) | ०६-०० |
| ०५ निर्भात दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई) | १०-०० |
| ०६ परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत) | |
| ०७ प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई) | ०४-०० |
| ०८ मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन) | ०८-०० |
| ०९ विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृतोंका संकलन) | १०-०० |
| १० सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक) | १५-०० |
| ११ तत्त्वानुशीलन (भाग १-२-३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई) | २०-०० |
| १२ अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंद्रजी कासलीवाल) | |
| १३ ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत) | |
| १४ मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | |
| १५ सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट निवासभूत छः पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | १८-०० |
| १६ आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-५६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | २०-०० |
| १७ परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | २०-०० |
| १८ अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन) | १५०-०० |
| १९ धन्य आराधना (श्रीमद् राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन) | |
| २० सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय | २५.०० |
| २१ कुटुम्ब प्रतिबंध | २५.०० |

| | | |
|-----|---|-------|
| ૨૨ | દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૬૬, ૪૪૯, ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈકે પ્રવચન) | ૨૫-૦૦ |
| ૨૩ | પ્રવચન નવનીત ભાગ-૧ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામી કે પ્રવચન) | ૭૫-૦૦ |
| ૨૪ | ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહિનશ્રી ચંપાબહન દ્વારા ગુરુ ભક્તિ) | ૧૫-૦૦ |
| ૨૫ | આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી દ્વારા) | ૫૦-૦૦ |
| ૨૬ | કહાન રત્ન સરિતા (પરમાગમસાર કે વિભિન્ન વચનામૃતોં પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ કે પ્રવચન) | ૩૦-૦૦ |
| ૨૭ | સુવિધિ દર્શન (સુવિધિ લેખ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ કે પ્રવચન) | ૪૦-૦૦ |
| ૨૮. | વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કે નાયરોવી મેં હુણ પ્રવચન) | ૨૦-૦૦ |

વીતરાગ સત્સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ

| | મૂલ્ય |
|---|----------|
| ૦૧ ગુરુગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેશી સ્ફુરિત ગુરુભાઈ ત) | ૦૫-૦૦ |
| ૦૨ જિજ્ઞાસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃતોંનું સંકલન) | ૦૮-૦૦ |
| ૦૩ દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત) | ૦૨-૦૦ |
| ૦૪ દ્રવ્યદષ્ટિપ્રકાશ ભાગ-૩ (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીની તત્ત્વચર્યા) | ૦૪-૦૦ |
| ૦૫ દસલક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂ. ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો) | ૦૬-૦૦ |
| ૦૬ ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન) | ૧૦-૦૦ |
| ૦૭ નિર્ભાત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ) | ૧૦-૦૦ |
| ૦૮ પરમાત્મપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત) | ૧૫-૦૦ |
| ૦૯ પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત) | ૧૧-૨૫ |
| ૧૦ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૧ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો) | અનુપલબ્ધ |
| ૧૧ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૨ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો) | ૨૫-૦૦ |
| ૧૨ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૩ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો) | ૩૫-૦૦ |
| ૧૩ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૪ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ શિત્તઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો) | ૭૫-૦૦ |
| ૧૪ પ્રવચન પ્રસાદ ભાગ-૧-૨ (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો) | ૬૫-૦૦ |
| ૧૫ પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ) | ૦૩-૦૦ |

| | | |
|----|---|----------|
| ૧૬ | વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન) | ૦૭-૦૦ |
| ૧૭ | ભગવાન આત્મા (દ્રવ્યદૃષ્ટિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન) | ૦૭-૦૦ |
| ૧૮ | પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન) | ૦૬-૦૦ |
| ૧૯ | સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી શુલ્લક) | ૧૫-૦૦ |
| ૨૦ | આધ્યાત્મિક પત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો) | ૦૨-૦૦ |
| ૨૧ | અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો) | પ્રેસમાં |
| ૨૨ | જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો) | ૦૬-૦૦ |
| ૨૩ | બીજું કાંઈ શોધ મા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન) | ૦૬-૦૦ |
| ૨૪ | મુમુક્ષુતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૧૫-૦૦ |
| ૨૫ | સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભુત છ પદનો અમૃત પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૨૬ | આત્મયોગ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૬૯, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૨૭ | પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૨૮ | અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા લિખિત વચનામૃતોનું સંકલન) | ૧૫૦-૦૦ |
| ૨૯ | સિદ્ધ પદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦ ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫.૦૦ |
| ૩૦ | કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫.૦૦ |
| ૩૧ | વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં 'બહેનશ્રીના વચનામૃત' પર થયેલાં પ્રવચનો) | ૨૫.૦૦ |
| ૩૨ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૪૦.૦૦ |
| ૩૩ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૮૫.૦૦ |
| ૩૪ | દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૬૬, ૪૪૯, ૫૭૨, પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫.૦૦ |
| ૩૫ | કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) ('પરમાગમસાર' માંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫.૦૦ |
| ૩૬ | સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં 'સમયસાર' પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો) | ૩૫.૦૦ |
| ૩૭ | સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત 'સુવિધિ' લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન) | ૨૫.૦૦ |

| | | |
|----|--|------------|
| ૩૮ | સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫.૦૦ |
| ૩૯ | સમકિતનું બીજ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૩૦.૦૦ |
| ૪૦ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦.૦૦ |
| ૪૧ | કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) ('પરમાગમસાર' માંથી કમબદ્ધપર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૩૦.૦૦ |
| ૪૨ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦.૦૦ |
| ૪૩ | અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦.૦૦ |
| ૪૪ | કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) 'કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦.૦૦ |
| ૪૫ | કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) 'કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦.૦૦ |
| ૪૬ | બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) 'દ્રવ્યસંગ્રહ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો. | ૨૦.૦૦ |
| ૪૭ | બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) 'દ્રવ્યસંગ્રહ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો. | ૨૦.૦૦ |
| ૪૮ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦.૦૦ |
| ૪૯ | અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો | (પ્રેસમાં) |

**वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से
प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या**

| | | |
|----|---|--------|
| ०१ | प्रवचनसार (गुजराती) | १५०० |
| ०२ | प्रवचनसार (हिन्दी) | ४२०० |
| ०३ | पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती) | १००० |
| ०४ | पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी) | २५०० |
| ०५ | समयसार नाटक (हिन्दी) | ३००० |
| ०६ | अष्टपाहुड (हिन्दी) | २००० |
| ०७ | अनुभव प्रकाश | २१०० |
| ०८ | परमात्मप्रकाश | ४१०० |
| ०९ | समयसार कलश टीका (हिन्दी) | २००० |
| १० | आत्मअवलोकन | २००० |
| ११ | समाधितंत्र (गुजराती) | २००० |
| १२ | बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी) | ३००० |
| १३ | ज्ञानामृत (गुजराती) | १०,००० |
| १४ | योगसार | २००० |
| १५ | अध्यात्मसंदेश | २००० |
| १६ | पद्मनंदीपंचविंशती | ३००० |
| १७ | समयसार | ३१०० |
| १८ | समयसार (हिन्दी) | २५०० |
| १९ | अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित) | ३००० |
| २० | द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती) | १०,००० |
| २१ | द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी) | ६६०० |
| २२ | पुरुषार्थसिद्धिउपाय (गुजराती) | ६१०० |
| २३ | क्रमबद्धपर्याय (गुजराती) | ८००० |
| २४ | अध्यात्मपराग (गुजराती) | ३००० |
| २५ | धन्य अवतार (गुजराती) | ३७०० |
| २६ | धन्य अवतार (हिन्दी) | ८००० |
| २७ | परमामगसार (गुजराती) | ५००० |
| २८ | परमामगसरा (हिन्दी) | ४००० |
| २९ | वचनामृत प्रवचन भाग-१-२ | ५००० |

| | | |
|----|-----------------------------------|------|
| ३० | निर्भूत दर्शननी केडीए (गुजराती) | ५००० |
| ३१ | निर्भूत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी) | ७००० |
| ३२ | अनुभव प्रकाश (हिन्दी) | २००० |
| ३३ | गुरुगुण संभारणा (गुजराती) | ३००० |
| ३४ | जिण सासणं सव्वं (गुजराती) | २००० |
| ३५ | जिण सासणं सव्वं (हिन्दी) | २००० |
| ३६ | द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती) | २००० |
| ३७ | दस लक्षण धर्म (गुजराती) | २००० |
| ३८ | धन्य आराधना (गुजराती) | १००० |
| ३९ | धन्य आराधना (हिन्दी) | १५०० |
| ४० | प्रवचन नवनीत भाग-१-४ | ५८५० |
| ४१ | प्रवचन प्रसाद भाग-१-२ | १५०० |
| ४२ | पथ प्रकाश (गुजराती) | २००० |
| ४३ | प्रयोजन सिद्धि (गुजराती) | ३५०० |
| ४४ | प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी) | २५०० |
| ४५ | विधि विज्ञान (गुजराती) | २००० |
| ४६ | विधि विज्ञान (हिन्दी) | २००० |
| ४७ | भगवान आत्मा (गुजराती) | २००० |
| ४८ | सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती) | १००० |
| ४९ | सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी) | १५०० |
| ५० | तत्त्वानुशीलन (गुजराती) | ४००० |
| ५१ | तत्त्वानुशीलन (हिन्दी) | २००० |
| ५२ | बीजुं काई शोध मा (गुजराती) | ४००० |
| ५३ | दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी) | २००० |
| ५४ | मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती) | २५०० |
| ५५ | मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी) | ३५०० |
| ५६ | अमृत पत्र (गुजराती) | २००० |
| ५७ | अमृत पत्र (हिन्दी) | २००० |
| ५८ | परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती) | १५०० |
| ५९ | परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी) | २००० |
| ६० | आत्मयोग (गुजराती) | १५०० |
| ६१ | आत्मयोग (हिन्दी) | २५०० |
| ६२ | अनुभव संजीवनी (गुजराती) | १००० |

| | | |
|----|--|------|
| ६३ | अनुभव संजीवनी (हिन्दी) | १००० |
| ६४ | ज्ञानामृत (हिन्दी) | २५०० |
| ६५ | वचनामृत रहस्य | १००० |
| ६६ | दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती) | ३००० |
| ६७ | कहान रत्न सरिता (हिन्दी-गुजराती) | २५०० |
| ६८ | प्रवचन सुधा (भाग-१) | १००० |
| ६९ | कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी-गुजराती) | ३५०० |
| ७० | सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी-गुजराती) | ३००० |
| ७१ | गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती) | ३००० |
| ७२ | आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन | ७५० |
| ७३ | प्रवचन सुधा (भाग-२) | ७५० |
| ७४ | समयसार दोहन | ७५० |
| ७५ | गुरु गुण संभारणा | ७५० |
| ७६ | सुविधिदर्शन | १००० |
| ७७ | समकितनुं बीज | १००० |
| ७८ | स्वरूपभावना | १००० |
| ७९ | प्रवचन सुधा (भाग-३) | १००० |
| ८० | प्रवचन सुधा (भाग-४) | १००० |
| ८१ | कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१ | १००० |
| ८२ | कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२ | १००० |
| ८३ | सुविधि दर्शन (हिन्दी) | १००० |
| ८४ | प्रवचन सुधा (भाग-५) | १००० |
| ८५ | द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१) | १००० |
| ८६ | द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२) | १००० |
| ८७ | वचनामृत रहस्य (हिन्दी) | १००० |

पाठकों की नोंध के लिये

पाठकों की नोंध के लिये

पाठकों की नोंध के लिये